2.5

परीक्षा प्रणाली में सुधार

राष्ट्रीय फोकस समूह

का

आधार–पत्र

2.5

परीक्षा प्रणाली में सुधार

राष्ट्रीय फोकस समूह

का

आधार-पत्र

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

ISBN 978-81-7450-822-5

प्रथम संस्करण
मार्च 2008 फाल्गुन 1929

PD 3T NSY

© राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 2008

रु 25.00

सर्वाधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भाग को छापना तथा इलैक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फोटोप्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग अथवा किसी अन्य विधि से पुनः प्रयोग पद्धति द्वारा उसका संग्रहण अथवा प्रसारण वर्जित है।
- इस पुस्तक की बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनर्विक्रय या किराए पर न दी जाएगी, न बेची जाएगी।
- इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टिकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं होगा।

एन सी ई आर टी के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016 फोन : 011-26562708

108, 100 फीट रोड
होस्डेकेरे हेली एक्सटेंशन
बनाशंकरी III स्टेज
बेंगलुरु 560 085 फोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014 फोन : 079-27541446

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
निकट: धनकल बस स्टॉप पनिहटी
कोलकाता 700 114 फोन : 033-25530454

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लैक्स
मालीगांव
गुवाहाटी 781021 फोन : 0361-2674869

प्रकाशन सहयोग

अध्यक्ष, प्रकाशन विभाग : *पेय्यटि राजाकुमार*
मुख्य उत्पादन अधिकारी : *शिव कुमार*
मुख्य संपादक : *श्वेता उप्पल*
मुख्य व्यापार प्रबंधक : *गौतम गांगुली*
संपादक : *नरेश यादव*
उत्पादन : *अरुण चितकारा*

सज्जा एवं आवरण
श्वेता राव

एन.सी.ई.आर.टी. वाटरमार्क 70 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा बंगाल ऑफसैट वर्क्स, 335, खजूर रोड, करोलबाग, नयी दिल्ली 110 005 द्वारा मुद्रित।

सार-संक्षेप

शिक्षा पात्र को भरने का नहीं बल्कि ज्योति को प्रज्वलित करने का कार्य करती है।

–सुकरात

परीक्षा प्रणाली में सुधार पर बने फोकस समूह ने परीक्षा व्यवस्था में आवश्यक **संरचनात्मक एवं प्रक्रियात्मक बदलावों** हेतु महत्त्वपूर्ण अनुशंसाएँ दीं जिनका सारांश यहाँ दिया जा रहा है। इन्हें उन अनुशंसाओं जिसमें विद्यार्थियों के बीच तनाव एवं चिंता को कम करने की भी बात है, के साथ समग्रता में पढ़ा जाना चाहिए। (कृपया नोट करें कि नीचे दी गई कुछ अनुशंसाएँ-खासकर 1, 2, 4, 7 और 10–विद्यार्थी की तनाव की समस्याओं, चिंताओं और आत्महत्या पर भी ध्यान देती हैं।)

1. प्रत्येक क्षेत्र की संस्थाएँ (जैसे अभियांत्रिकी, विधि, औषधि आदि) एक दूसरे के साथ मिलकर पूरे देश में लागू होने वाली एक प्रवेश परीक्षा की रूपरेखा तैयार करें। परीक्षा कार्यक्रम के समन्वय, सुरक्षा सुनिश्चित करने एवं योग्यता सूची के यथासमय प्रकाशन के निर्देशन के लिए राष्ट्रीय स्तर पर एक नोडल एजेंसी प्रस्तावित है । हमारा इस बात पर विशेष बल है कि किसी भी तरह इस नोडल एजेंसी को स्वयं जाँच परीक्षा का खाका बनाने एवं श्रेणी निर्धारित करने की कोशिश नहीं करनी चाहिए ।
2. किसी भी परिस्थिति में बोर्ड की परीक्षाओं का दूसरी श्रेणियों में, जैसे ग्यारहवीं, आठवीं और पाँचवीं में विस्तार नहीं किया जाना चाहिए और यह खबर कि कुछ राज्यों के बोर्डों ने ऐसी परीक्षाएँ शुरू की हैं, हमारे लिए गंभीर चिंता का कारण है। ***वस्तुतः हमारा यह विचार है कि दसवीं कक्षा की बोर्ड की परीक्षाओं को शीघ्र ही ऐच्छिक बनाया जाए।*** दसवीं कक्षा के वे विद्यार्थी, जो उसी स्कूल में ग्यारहवीं कक्षा की पढ़ाई जारी रखना चाहते हैं और जिन्हें किसी तात्कालिक उद्देश्य के लिए बोर्ड के प्रमाणपत्र की आवश्यकता नहीं है, बोर्ड परीक्षाओं के बदले स्कूल द्वारा संचालित परीक्षा देने की स्वतंत्रता होनी चाहिए ।
3. पंजीकरण और ग्रेड की रिपोर्टिंग के कंप्यूटरीकरण के कारण तालिका पर प्रदर्शन प्रतिमानों का विस्तृत निरूपण जैसे पूर्ण अंक/ग्रेड, किसी एक विषय के विद्यार्थियों के मध्य शतमक श्रेणी, समकक्ष विद्यार्थियों के मध्य शतमक श्रेणी (जैसे–एक ही ग्रामीण क्षेत्र या शहरी प्रखंड के स्कूल) देना संभव है। विशेषकर अंतिम प्रतिमान के विषय में हमारी मान्यता है कि यह

योग्यता की निर्णायक जाँच है। इस सूचना का सार्वजनिकीकरण उच्च शिक्षा संस्थाओं को योग्यता सूची की धारणा के संबंध में मिश्रित और सापेक्षिक दृष्टिकोण अपनाने में मदद करेगा।

4. केरल, गुजरात, जम्मू एवं कश्मीर जैसे राज्यों में जहाँ विद्यार्थियों को उनकी उत्तर पुस्तिकाएँ स्केन या फोटोस्टेट करके (निश्चित रूप से एक शुल्क लेकर) उपलब्ध कराने का काम शुरू किया गया है, वहाँ पुनःजाँच हेतु आवेदनों में आश्चर्यजनक कमी आई है। हम राज्यों की इस तरह की अपनी व्यवस्था को ज़्यादा पारदर्शी बनाने की कोशिशों की सराहना करते हैं। कोई आश्वस्त हो सकता है कि इन राज्यों में ज़्यादातर परीक्षक अपना काम बेहतर तरीके से करते हैं। अधिक पारदर्शिता अधिक विश्वसनीयता को जन्म देती है । इस बात की हम जोरदार अनुशंसा करते हैं कि अन्य राज्य भी विद्यार्थी को उसकी माँग पर एक उचित शुल्क लेकर (लेकिन रियायती मूल्य पर नहीं) ऐसे अवसर उपलब्ध कराने की व्यवस्था सुनिश्चित करें।
5. शिक्षकों को बलपूर्वक परीक्षण कार्य में लगाने की प्रवृत्ति से अच्छे मूल्यांकन की संभावनाओं को धक्का पहुँचता है और इसे शीघ्र बंद किया जाना चाहिए। इससे भी बढ़कर यह समझा जाना चाहिए कि सभी अच्छे शिक्षक योग्य परीक्षक नहीं होते और यही बात विपरीत तरीके से भी कही जा सकती है। अगर बोर्ड परीक्षकों को बेहतर भत्ता दें तो बहुत सारी समस्याएँ हल हो जाएँगी–हमारी अनुशंसा है कि दैनिक भत्ते को 100 या 125 रुपये के निम्न स्तर से बढ़ाकर मात्र 10 या 20 प्रतिशत की वृद्धि नहीं, बल्कि दो गुना या तीन गुना किया जाए– और अनमने ढंग से काम करने वाले परीक्षकों को इस काम से अलग कर दिया जाए । यह विदित है कि अधिकांश राज्यों के बोर्डों की आर्थिक स्थिति काफ़ी अच्छी है, यहाँ तक कि एक छोटा राज्य बोर्ड भी 84 करोड़ रुपये की आमदनी करता है, तो इस काम में पैसे की समस्या आड़े नहीं आनी चाहिए ।
6. प्रश्नपत्र निर्धारित करने की प्रक्रिया में भी अत्यधिक सुधार की ज़रूरत है। वस्तुतः महाराष्ट्र में इसके सफल प्रयत्न भी हुए हैं (जो गुणवत्ता की बजाए सुरक्षा कारणों से अधिक संबंधित हैं)। *प्रश्नपत्र* निर्धारित करने की ओर से ध्यान हटाकर *प्रश्न* निर्धारित करने की ओर केंद्रित करना चाहिए। यह ज़रूरी नहीं कि हर एक प्रश्न विशेषज्ञ द्वारा ही तय किया जाए। अच्छे प्रश्न पूरे वर्ष के दौरान शिक्षकों से, उस विषय के कॉलेज प्राध्यापकों से, दूसरे राज्य के शिक्षकों से, यहाँ तक कि विद्यार्थियों से एकत्र किए जाने चाहिए। इन प्रश्नों को विशेषज्ञों द्वारा सावधानीपूर्वक छाँटने के बाद कठिनाई के स्तर, विषय क्षेत्र, योग्यता पैमाना, प्रयोग और

प्रमाणित तथ्य के अनुसार चुना और वर्गीकृत किया जाना चाहिए। एक प्रश्न के चयनित होने और प्रश्नपत्र में उपयोग में आने के बाद प्रश्न तैयार करने वाले को उचित पारिश्रमिक मिलना चाहिए।

7. (अ) आज वास्तविक जीवन के कार्य तथा अधिकांश व्यवसाय व्यक्ति में सूचना **प्राप्त करने** उसका **सूक्ष्म परीक्षण और मूल्यांकन** (क्योंकि बहुत सारी निरर्थक सूचनाएँ भी उपलब्ध होती हैं) तथा **चयन** और **विश्लेषण** करने की योग्यता की माँग करते हैं। इन कौशलों की जाँच अच्छी तरह से तैयार किए गए बहु-विकल्पी प्रश्नों के माध्यम से की जा सकती है, जिनके उत्तर एकसमान प्रतीत होने वाले और जटिल हों। सर्वत्र व्याप्त लघु उत्तरीय प्रश्न सामान्यत: स्मरण की जाँच से ज़्यादा कुछ नहीं करते इसलिए इसके बदले अच्छे बहुविकल्पी प्रश्नों को रखा जा सकता है। लघु उत्तरीय प्रश्नों की अपेक्षा बहुविकल्पी प्रश्नों के कुछ दूसरे लाभ भी हैं–

   i) इन्हें मशीन द्वारा जाँचा जा सकता है, इस कारण शीघ्र विश्वसनीय परिणाम संभव हैं ।

   ii) प्रश्नों की क्रम संख्या में फेरबदल कर नकल की समस्या को व्यापक स्तर पर दूर किया जा सकता है।

   iii) हर एक प्रश्न का उत्तर देने में समय कम लगने के कारण ज़्यादा से ज़्यादा पाठ्यक्रम को एक प्रश्नपत्र में समाहित करना संभव है।

   डी.एस.ई.आर.टी., कर्नाटक की रिपोर्ट के अनुसार जहाँ हाल के वर्षों में बहुविकल्पी प्रश्नों का प्रयोग किया गया है और इनका अनुपात 60 प्रतिशत तक कर दिया गया है, विद्यार्थियों के तनाव के स्तर तथा ग्रामीण-शहरी क्षेत्रों की अंक प्राप्ति की विषमता में कमी आई है साथ ही उत्तीर्ण होने का प्रतिशत भी बढ़ा है।

   (ब) प्राप्त तथ्यों को सुसंगत तरीके से प्रस्तुत करने, उनको आकर्षक तर्कों में समायोजित करने और वास्तविक जीवन की समस्याओं में उनका अनुप्रयोग करने के कौशल भी महत्त्वपूर्ण हैं। इनका मूल्यांकन भाषा एवं सामाजिक विज्ञान के विषयों में खुले-अंत वाले प्रश्नों के निबंधात्मक उत्तरों द्वारा तथा विज्ञान और गणित में श्रेणीबद्ध समस्याओं द्वारा सबसे अच्छी तरह होता है। प्रासंगिक आँकड़े, प्राथमिक स्रोत/पाठ्यांश को भी प्रश्नपत्र में उपलब्ध कराया जाना चाहिए।

8. परीक्षकों और परीक्षार्थियों की पहचान एक दूसरे से गुप्त रखकर परीक्षा के बाद होने वाली बहुत सारी धाँधलियों को रोका जा सकता है। महाराष्ट्र बोर्ड ने उत्तर पुस्तिकाओं की विशेष

कूट अंकन पद्धति को सफलतापूर्वक लागू किया है, जिसमें परीक्षार्थियों (और स्कूल) की भी पहचान न सिर्फ परीक्षकों से बल्कि बोर्ड के कर्मचारियों से भी छिपाकर रखी जाती है। जब इसका प्रयोग अन्य उपायों जिसे दूसरे राज्यों के बोर्ड पहले से ही अपनाते हैं यथा किसी परीक्षक विशेष को दी जाने वाली परीक्षा पुस्तिकाओं का आकस्मिक पद्धति से चयन के साथ, किया जाए तो, परीक्षक के स्तर पर धाँधली कर पाना काफ़ी मुश्किल हो जाता है।

9. परीक्षा भवन के बाहर से सहायता नकल का एक बहुत बड़ा स्रोत है। कभी-कभी तो बहुत चालाकीपूर्वक तरीके से जैसे शीशे और ड्रम के द्वारा यह कार्य किया जाता है। अगर परीक्षार्थियों को परीक्षा के पहले डेढ़ घंटे तक केंद्र छोड़ने की अनुमति नहीं दी जाए और प्रश्नपत्र को बाहर ले जाने की अनुमति नहीं दी जाए तो इस तरह की अधिकांश घटनाओं को बढ़ने से रोका जा सकता है। इससे परीक्षा केंद्र के बाहर भटकने वाले महानुभावों को पता भी नहीं लगेगा कि परीक्षार्थियों से किन प्रश्नों के उत्तर पूछे गए हैं।
10. एक संवेदनशील शिक्षक सामान्यत: विद्यार्थियों की विशेष क्षमताओं और कमज़ोरियों को पहचानता है, उसे अपनी इस अंतर्दृष्टि का उपयोग मूल्यांकन में करना चाहिए। आंतरिक मूल्यांकन की व्यवस्था को सशक्त बनाते हुए उसे और अधिकार दिए जाएँ। इसी के साथ स्कूलों द्वारा इसका दुरुपयोग (जैसाकि वर्तमान में प्रायोगिक परीक्षाओं में किया जाता है) रोकने के लिए आंतरिक मूल्यांकन को सापेक्ष पैमाने पर श्रेणीबद्ध किया जाना चाहिए न कि पूर्ण पैमाने पर। इसे बाह्य परीक्षा में प्राप्त अंकों के आधार पर मापा तथा नियंत्रित भी किया जाना चाहिए।

निष्कर्षत: ऐसा कहा जाना चाहिए कि उपरोक्त सुधारों के लिए भी हमने इतनी देर कर दी है कि हम इनसे बीसवीं सदी के मध्य या अन्त तक ही पहुँच पाएँगे, इक्कीसवीं शताब्दी में तो शायद ही। हमारी संकल्पना है कि लगभग दस वर्ष की दीर्घ अवधि में एक नयी नींव पर बिलकुल भिन्न व्यवस्था खड़ी होगी। यह नयी व्यवस्था वास्तव में शिक्षक को ही उसके विद्यार्थी का मुख्य रूप से मूल्यांकन करने वाला बनाएगी। यह व्यवस्था अल्पकालिक नहीं बल्कि निरंतर चलने वाली होगी (संज्ञानात्मक क्षेत्र और कागज़ तथा कलम से आगे बढ़ेगी) और उम्मीद है कि सभी के द्वारा एक बोझ के रूप में नहीं बल्कि सीखने के एक उपकरण के रूप में देखी जाएगी। इस व्यवस्था में बोर्ड की मुख्य भूमिका में काफ़ी बदलाव आएगा। यह बदलाव वर्तमान की प्रत्यक्ष परीक्षा व्यवस्था से विद्यालय-आधारित और शिक्षण-आधारित मूल्यांकन के अधिक वैधीकरण की ओर होगा। अगर बोर्ड

द्वारा फिर भी किसी सीधी परीक्षा की ज़रूरत होती है, तो बिलकुल अलग तरीकों यथा वैकल्पिक, किताब से देखकर और माँग पर (विद्यार्थी जब तैयार हों) के बारे मे सोचा जा सकता है।

उपर्युक्त संकल्पित दीर्घकालिक परिवर्तन लागू हो सकें इसके पूर्व निम्नलिखित कार्यक्रम हमें महत्त्वपूर्ण आँकड़े उपलब्ध कराएँगे :

प्रायोगिक कार्यक्रम 1% जितनी भी परीक्षाएँ होती हैं उनका 60 प्रतिशत अथवा उससे भी ज़्यादा बहुविकल्पीय प्रश्नों का प्रयोग करने की ओर, कर्नाटक में पहले ही इसकी शुरुआत की जा चुकी है।

प्रायोगिक कार्यक्रम 2 % स्कूल समाप्ति पर एक हल्की सी परीक्षा । पढ़े गए सभी विषयों से शामिल किए गए 150 बहु-विकल्पीय प्रश्नों की तीन घंटे की परीक्षा। इसका एकमात्र उद्देश्य स्कूल द्वारा दिए गए परीक्षा ग्रेड को वैधता देना है और उनको नियंत्रण कारक द्वारा बढ़ाना/घटाना है (तुर्की में पहले से ही विद्यमान।)

प्रायोगिक कार्यक्रम 3% किताब खोलकर परीक्षाएँ और स्रोत विश्लेषण पर आधारित मूल्यांकन।

प्रायोगिक कार्यक्रम 4% परीक्षा व्यवस्था अनिवार्य रूप से धीरे-धीरे उस तरफ़ बढ़नी चाहिए जिसमें विद्यार्थियों की माँग पर परीक्षाएँ (ऐसी परीक्षाएँ सामान्यत: अंतरराष्ट्रीय स्तर पर 'ऑन लाइन' ली जाती हैं) जब वे तैयार हों, तभी ली जाएँ न कि व्यवस्था की सुविधा के अनुसार। हमारा सुझाव है कि एक छोटी सी शुरुआत प्रायोगिक परियोजना के रूप में कंप्यूटर विज्ञान की परीक्षाओं में की जाए और भविष्य में इसका विस्तार गणित और भौतिक शास्त्र की परीक्षा में किया जाए।

राष्ट्रीय फोकस समूह
परीक्षा प्रणाली में सुधार
के सदस्यों के नाम

डॉ. साइरस वकील
अध्यक्ष
डायरेक्टर ऑफ़ स्टडीज़
महिंद्रा यूनाइटेड वर्ल्ड कॉलेज ऑफ़ इंडिया
पाऊट, पुणे, महाराष्ट्र

प्रो. ए.बी.एल. श्रीवास्तव
पूर्व विभागाध्यक्ष
डी.ई.एम.ई, एन.सी.ई.आर.टी.
बी-41, सेक्टर 14
नोएडा-210 304
उत्तर प्रदेश

प्रो. (श्रीमती) एन. पंचपकेशन
पूर्व विभागाध्यक्ष
सी.आई.ई., दिल्ली विश्वविद्यालय
के-110, हौज खास
नयी दिल्ली-110 016

प्रो. इला पटेल
इंस्टीट्यूट ऑफ़ रूरल मैनेजमेंट
आनंदालय विद्यालय के निकट
पोस्ट बॉक्स नं. 60
आनंद-388 001
गुजरात

श्री जी. बालासुब्रमणियम
निदेशक (शैक्षणिक)
सेंट्रल बोर्ड ऑफ़ सेकंडरी एजुकेशन
(सी.बी.एस.ई.)
2, सामुदायिक केंद्र
प्रीत विहार, दिल्ली-110 092

डॉ. बी.एल. पंडित
पूर्व एन.सी.ई.आर.टी. संकाय सदस्य
143, नर्मदा अपार्टमेंट
अलकनंदा
नयी दिल्ली-110019

प्रो. समीर सिन्हा
विजय टीचर्स कॉलेज
ब्लॉक 4, विजय नगर
बेंगलुरु-560 011
कर्नाटक

श्रीमती यू. महेंद्रू
जी-146, एल.आई.सी. कॉलोनी
प्रथम तल, जीवन निकेतन
पश्चिम विहार, नयी दिल्ली

श्री के. देवराजन
ज्वाइंट डायरेक्टर ऑफ़ गवर्नमेंट एग्ज़ामिनेशंस
(हायर सेकंडरी) कॉलेज रोड
चेन्नई-600 006, तमिलनाडु

डॉ. के.सी. बसथिया
विभागाध्यक्ष, शिक्षा विभाग
सालेपुर कॉलेज
सालेपुर, कटक-754 202
उड़ीसा

डॉ. एस.सी. पुरोहित
निदेशक
स्टेट इंस्टीट्यूट ऑफ़ एजुकेशनल रिसर्च एंड ट्रेनिंग
(एस.आई.ई.आर.टी.), 111, सहेली मार्ग, उदयपुर
राजस्थान

श्री जेम्स जोसेफ
निदेशक
उच्च माध्यमिक शिक्षा
केरल सरकार
हाऊसिंग बोर्ड बिल्डिंग्स
तिरुवनंतपुरम-695 001
केरल

डॉ. मोहन आवटे
अध्यक्ष
महाराष्ट्र राज्य माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक
शिक्षा बोर्ड
शिवाजी नगर, पुणे-411 005
महाराष्ट्र

डॉ. वीर पाल सिंह
रीडर
शैक्षिक मापन एवं मूल्यांकन विभाग
(डी.ई.एम.ई.)
एन.सी.ई.आर.टी.
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली-110 016

डा. अवतार सिंह (सदस्य-सचिव)
प्रोफ़ेसर
शैक्षिक मापन एवं मूल्यांकन विभाग
(डी.ई.एम.ई.)
एन.सी.ई.आर.टी., श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली-110 016

आमंत्रित सदस्य

प्रोफ़ेसर आर. एच. दवे
पूर्व निदेशक
यूनेस्को इंस्टीट्यूट ऑफ़ एजुकेशन
हैम्बर्ग, जर्मनी

डा. डी. वी. शर्मा
महासचिव
काउंसिल ऑफ़ बोर्ड्स ऑफ़ स्कूल एजुकेशन
(सी.ओ.बी.एस.ई.), नयी दिल्ली

सुश्री हर्ष कुमारी
प्रधानाध्यापिका
प्रायोगिक विद्यालय, शिक्षा विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डा. पद्मा एम. सारंगपाणि
सहायक अध्येता
नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ़ एडवांस्ड स्टडीज़
(एन.आई.ए.एस), बेंगलुरु, कर्नाटक

डा. शैलेश ए. शिराली
प्राचार्य
अंबर वैली आवासीय विद्यालय
के. एम. रोड, चिकमंगलूर-577201
कर्नाटक

डा. गोपाल कृष्ण राव
चौथा क्रॉस रोड
बेंगलुरु, कर्नाटक

अनुवाद सहयोग

डॉ. अनिल चमड़िया, *लेखक-पत्रकार,* सी-251, सेक्टर-19, रोहिणी, दिल्ली-110 085

डॉ. चंद्रा सदायत, *रीडर,* भाषा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली-110 016

डॉ. ए.डी. तिवारी, *रीडर,* शैक्षिक मापन एवं मूल्यांकन विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली-110 016

डॉ. रंजना अरोड़ा, *रीडर,* पाठ्यचर्या समूह, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली-110 016

विषय-सूची

सार-संक्षेप *v*

राष्ट्रीय फोकस समूह ***परीक्षा प्रणाली में सुधार*** *के सदस्यों के नाम* *xi*

1. प्रस्तावना 1

1.1 परीक्षा प्रणाली में सुधार: इसकी आवश्यकता क्यों? 1

1.2 प्रस्थान बनाम प्रवेश परीक्षाएँ 1

2. परीक्षा प्रणाली में सुधारों के लिए दीर्घकालिक दृष्टि 2

2.1 नए ज्ञान समाजों की अधिगम अनिवार्यताएँ 3

2.2 लिपिकों को तैयार करने से परे–परीक्षाएँ एवं सामाजिक न्याय 6

2.3 बोर्ड परीक्षाएँ क्या जाँच करतीं हैं ? 8

2.4 एक नीति सबके लिए उपयुक्त नहीं होती–लचीलेपन की ज़रूरत 12

2.4.1 हम निम्न समाधान प्रस्तुत करते हैं 12

2.5 परीक्षा संबंधी तनाव व चिंता में कमी 14

2.6 परीक्षा प्रबंधन 16

2.6.1 पूर्व-परीक्षा 17

2.6.2 परीक्षाओं का संचालन 18

2.7 अंक/ग्रेड रिपोर्ट में पारदर्शिता और ईमानदारी 19

2.8 विद्यालय-आधारित आकलन 22

3. निष्कर्ष 23

परिशिष्ट 1 25

परिशिष्ट 2 26

संदर्भ-सूची 29

1. प्रस्तावना

1.1 परीक्षा प्रणाली में सुधार : इसकी आवश्यकता क्यों?

अ) क्योंकि, भारत में विद्यालय बोर्ड की परीक्षाएँ इक्कीसवीं सदी के 'ज्ञान समाज' और इसके नवाचारी समस्या-समाधान-कर्ताओं की आवश्यकताओं के अत्यंत अनुपयुक्त है।

ब) क्योंकि, ये सामाजिक न्याय की ज़रूरतों को पूरा नहीं करतीं।

स) क्योंकि, प्रश्नपत्रों की गुणवत्ता काफ़ी कम होती है। सामान्यत: ये प्रश्नपत्र बिना समझे रटने की आदत डालते हैं और तर्क शक्ति तथा विश्लेषण जैसे उच्च स्तरीय कौशलों की जाँच में अक्षम हैं, अपनी कल्पना द्वारा समस्या-समाधान, रचनात्मकता और निर्णय क्षमता की तो बात ही छोड़ दें ।

द) क्योंकि इनमें लचीलापन नहीं है। 'एक नीति सबके लिए उपयुक्त' के सिद्धांत पर आधारित हैं। ये भिन्न प्रकार के शिक्षार्थियों एवं शैक्षिक वातावरण के लिए कोई छूट नहीं देती हैं।

य) क्योंकि, ये परीक्षाएँ अत्यधिक तनाव एवं चिंता उत्पन्न करती हैं। व्यापक मानसिक आघातों के अलावा जनसंचार माध्यमों तथा मनोवैज्ञानिक परामर्शदाताओं के अनुसार परीक्षाजनित आत्महत्याएँ एवं नर्वस ब्रेकडाउन की घटनाएँ बढ़ रही हैं।

र) क्योंकि, कई बोर्ड परीक्षा-पूर्व और परीक्षा-प्रबंधन में हालाँकि अच्छे तरीके अपना रहे हैं, फिर भी कुछ बोर्डों में अभी भी कई प्रत्यक्ष कमियाँ हैं।

ल) क्योंकि, यहाँ ग्रेड देने और ग्रेड/अंक रिपोर्ट में अक्सर पूर्ण प्रकटीकरण और पारदर्शिता का अभाव होता है।

व) क्योंकि स्कूल-आधारित मूल्यांकन की क्रियात्मक एवं विश्वसनीय व्यवस्था के लिए जगह बनाने की आवश्यकता है।

यहाँ दिए गए प्रत्येक बिंदु की विस्तृत चर्चा अलग-अलग खंडों में प्रत्येक के बदलाव के संबंध में दी गई अनुशंसाओं के साथ की गई है। कुछ अनुशंसाएँ एक से अधिक मुद्दों के लिए की गई हैं जिसे चिह्नित कर दिया गया है। हमने सामान्यत: उन मुद्दों पर सविस्तार लेखन से परहेज़ किया है, जो सीधे तौर पर दूसरे फोकस समूहों के क्षेत्र में आते हैं । हालाँकि यह रिपोर्ट अपनी समीक्षा में सुस्पष्ट होगी और अनावश्यक सामान्यीकरण तथा कठोर सैद्धांतीकरण से परहेज़ करते हुए सुधार हेतु ठोस प्रस्तावों पर ध्यान केंद्रित करेगी । यह सुधारों हेतु पूर्व में की गई अनुशंसाओं के परस्पर विरोधी संदर्भों के साथ अनुशंसाओं के घालमेल से भी परहेज करेगी। यहाँ यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि, नहीं लागू हुए शिक्षा सुधारों के तकाज़ों ने बहुत पहले ही अधिकारियों को शर्मिंदा करना छोड़ दिया था।

1.2 प्रस्थान बनाम प्रवेश परीक्षाएँ

बोर्ड परीक्षाओं की जिस एक आलोचना को हम अनुचित समझते हैं, उसका खाका हमें शुरू में ही खींच देना चाहिए। बोर्ड परीक्षाओं (खासकर बारहवीं कक्षा के स्तर पर) की प्राय: इस बात के लिए आलोचना की जाती है कि वे शिक्षा के अगले सोपान के चयन की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए अपर्याप्त हैं। हाल की प्रवेश परीक्षाओं में प्रचुरमात्रा में वृद्धि (जिनके लिए कोचिंग संस्थाएँ विद्यार्थियों को तैयार करने का दावा करती हैं) का दोष अक्सर बोर्ड परीक्षाओं के मत्थे मढ़ दिया जाता है। यह आलोचना बड़े पैमाने पर बोर्ड की परीक्षाओं के उद्देश्य के बारे में भ्रम के कारण उत्पन्न होती है। बोर्ड परीक्षाएँ प्रस्थान परीक्षाएँ होती हैं और आवश्यक रूप से उन्हें यही रहना चाहिए–जिनका लक्ष्य किसी पाठ्यक्रम के सफलतापूर्ण समापन को प्रमाणित करना है तथा यही होना चाहिए। (यह प्रमाणीकरण अर्जित की गई दक्षताओं का होना चाहिए न कि रटे गए विषय का जैसाकि फिलहाल है, और इस तथ्य से हमें हैरान नहीं होना चाहिए)। बोर्ड परीक्षाएँ

व्यावसायिक पाठ्यक्रम, रोजगारपरक पाठ्यक्रम या किसी अन्य के लिए 'प्रवेश' परीक्षा के रूप में परिकल्पित नहीं की जाती हैं और न ऐसा होना चाहिए। इन उच्च माध्यमिकोत्तर पाठ्यक्रमों की प्रकृति विशिष्ट होती है और इनमें खास प्रवीणता तथा अभिरुचि की ज़रूरत होती है। वहीं दूसरी तरफ़, बोर्ड परीक्षाओं की रूपरेखा अधिगम के विस्तृत आयामों के परीक्षण हेतु होती है जो पाठ्यचर्या के निर्माताओं द्वारा ज़रूरी समझी जाती हैं। यह इसके समापन को भी प्रमाणित करती हैं। दोनों भूमिकाएँ निश्चित रूप से भिन्न हैं। आई.आई.टी., नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ़ डिज़ाइन, विधि विद्यालय और इस तरह की दूसरी संस्थाएँ अपने मानकों के हिसाब से प्रवेश परीक्षाओं की रूपरेखा तैयार करती हैं और बोर्ड परीक्षाएँ अपने हिसाब से। इन दोनों के बीच प्रतिस्पर्द्धा की कोई ज़रूरत नहीं है और न ही एक को दूसरे को प्रतिवलित करने की कोशिश करनी चाहिए।

कोई एकमात्र यह दलील दे सकता है और हम भी विद्यार्थी के तनाव एवं क्लांति को कम करने की दृष्टि से बलपूर्वक कहना चाहते हैं कि प्रत्येक क्षेत्र की संस्थाएँ (जैसे अभियांत्रिकी, विधि, औषधि) एक दूसरे के साथ सामंजस्य बिठाते हुए पूरे देश में लागू होने वाली एक जाँच परीक्षा का नमूना तैयार करें। समान व्यावसायिक पाठ्यक्रम के लिए जाँच परीक्षाओं की एक बड़ी संख्या विद्यार्थियों के तनाव को बढ़ाने के अलावा और कुछ नहीं करतीं जो कि किसी के हित में नहीं है केवल कोचिंग संस्थानों को छोड़कर। राष्ट्रीय स्तर पर आम समन्वय, जाँच परीक्षा के कार्यक्रम की तैयारी, सुरक्षा सुनिश्चित करने और योग्यता सूची के यथासमय प्रकाशन को निर्देशित करने के लिए हम एक नोडल एजेंसी का प्रस्ताव करते हैं। जाँच परीक्षा का उपयोग करने वाली भिन्न संस्थाओं को एकसमान केंद्रिक पाठ्यक्रम के लिए सहमत करना भी इस नोडल एजेंसी के काम का हिस्सा होना चाहिए (और यह भविष्य में कोचिंग व्यवसाय की कटौती करने में फ़ायदेमंद होगा)। हम ज़ोर देकर कहना चाहते हैं कि इस नोडल एजेंसी को स्वयं किसी भी तरह जाँच परीक्षणों की या तो रूपरेखा तैयार करने की या ग्रेड देने की कोशिश नहीं करनी चाहिए।

2. परीक्षा प्रणाली में सुधारों के लिए दीर्घकालिक दृष्टि

अंततः यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि हमने जो अनुशंसाएँ की हैं, वे उस परीक्षा व्यवस्था में अल्पावधि और मध्यमावधि सुधार के लिए हैं जिसकी जड़ें उन्नीसवीं सदी के उपनिवेशवाद[1] में निहित हैं। इन कमियों के प्रति उपेक्षा हमें बीसवीं सदी के मध्य या अंत में विलंब से पहुँचाएगी परंतु इक्कीसवीं सदी में तो बहुत मुश्किल से। आगे चलकर हम देखेंगे कि (लगभग एक दशक में) बिलकुल नयी नींव पर एक पूर्णतः भिन्न व्यवस्था निर्मित होगी। यह व्यवस्था शिक्षक सशक्तीकरण का केवल ऊपर से ही समर्थन नहीं करेगी बल्कि वास्तव में उस पर उसके विद्यार्थियों का प्राथमिक मूल्यांकनकर्ता होने का भरोसा भी रखेगी (जबकि बाह्य नियमन और बोर्डों द्वारा परिमापन जैसे बचाव के उपाय भी रखे जाएँगे)। यह व्यवस्था अल्पकालिक नहीं, बल्कि निरंतर चलने वाली होगी तथा कागज़ और कलम तथा संज्ञानात्मक प्रभाव क्षेत्र से आगे बढ़ेगी और आशा की जाती है कि सब इसे बोझ के रूप में नहीं बल्कि उपचार के उपाय और सीखने के अग्रिम साधन के रूप में देखेंगे। इस व्यवस्था में बोर्डों की भूमिका आधारभूत रूप से बदलेगी और वर्तमान में चल रही सीधी परीक्षा की जगह सावधानीपूर्वक और निष्ठापूर्वक किए गए स्कूल-आधारित और शिक्षक-संचालित न्यायपूर्ण मूल्यांकन करेंगे। अगर बोर्ड द्वारा तब भी किसी सीधी परीक्षा की ज़रूरत होती है तो यह बिलकुल अलग तरीकों से होनी चाहिए– जैसे वैकल्पिक,

1. के. कुमार ने *पॉलिटीकल एजेंडा ऑफ़ एजुकेशन (2005)* में ज़ोरदार तर्क दिया कि परीक्षाएँ निर्दिष्ट पाठ्यपुस्तकों और परीक्षा संरचना को ज़्यादा महत्त्व देते हुए शिक्षक (भारतीय) को कमज़ोर करने की ब्रिटिश उपनिवेशवादी विचारधारा का आवश्यक अंग थीं। एरिक स्टोक की क्लासिक पुस्तक द *इंगलिश युटिलिटेरियंस एंड इंडिया* (1959) बताती है कि किस प्रकार ***मिल*** और अन्य दूसरों ने ब्रिटेन में प्रयोग करने के पहले योग्यता जाँच के रूप में प्रतियोगिता परीक्षाओं के सामर्थ्य के परीक्षण के लिए भारत और भारतीय शिक्षा व्यवस्था को प्रयोगशाला के रूप में इस्तेमाल किया।

किताब खोलकर और विद्यार्थी की माँग पर जब वह परीक्षा के लिए तैयार हो। इस व्यवस्था को साकार रूप देने के लिए इससे जुड़े सभी लोगों को शिक्षित करने और पुनः प्रशिक्षण देने की आवश्यकता पड़ेगी। इसमें समय और सबसे बढ़कर राजनीतिक इच्छा-शक्ति की आवश्यकता होगी क्योंकि कुछ ऐसे संस्थापित स्वार्थ होते हैं जिनके लिए ऐसे शिक्षार्थी-केंद्रित परिवर्तन घातक होंगे।

इसलिए नीचे रेखांकित अल्पकालीन एवं मध्यमकालीन सुधारों को इस प्रकार नहीं देखा जाना चाहिए कि वे अपने आप में बहुत महत्त्वपूर्ण हैं, बल्कि इसलिए कि वे ज़्यादा दीर्घकालीन मूल परिवर्तनों की ज़मीन तैयार करने वाले हैं। हमारी मान्यता है कि परंपरागत परीक्षाओं को तभी समाप्त किया जा सकता है जब उसके स्थान पर हमारे सामने परीक्षित विकल्प हों और इस रिपोर्ट के अंत में हमने इन विकल्पों के परीक्षण के लिए कुछ प्रायोगिक परियोजनाओं का प्रस्ताव किया है। आगे यह आवश्यक है कि परंपरागत बोर्ड परीक्षाएँ अपना विस्तार दूसरी श्रेणियों तक न करें। किसी भी परिस्थिति में बोर्ड परीक्षाओं का दूसरी श्रेणियों में, जैसे कि ग्यारहवींवीं, आठवीं और पाँचवीं में विस्तार नहीं किया जाना चाहिए। यह समाचार हमारे लिए गंभीर आशंका और चिंता का कारण है कि कुछ राज्यों में बोर्डों ने ऐसी परीक्षाएँ शुरू की हैं। *वास्तव में हमारा विचार है कि दसवीं कक्षा की बोर्ड परीक्षाओं को शीघ्र ही ऐच्छिक बनाया जाए। दसवीं कक्षा के ऐसे विद्यार्थियों को, जो उसी स्कूल में ग्यारहवीं की पढ़ाई जारी रखना चाहते हों और उन्हें तत्काल किसी उद्देश्य के लिए बोर्ड प्रमाणपत्र की आवश्यकता न हो, बोर्ड परीक्षाओं के बदले स्कूल द्वारा संचालित परीक्षा देने की स्वतंत्रता होनी चाहिए।*[2]

2.1 नए ज्ञान समाजों की अधिगम अनिवार्यताएँ

यह कहना लगभग निरर्थक है कि आज और आने वाले कल की शिक्षा की आवश्यकताएँ 19वीं एवं 20वीं सदी की शिक्षा आवश्यकताओं से एकदम अलग हैं। लेकिन विचार जब सच हो जाते हैं तब वे सामान्यतः निरर्थक और अरुचिकर हो जाते हैं। औपनिवेशिक काल में विद्यालयी शिक्षा की रचना नौकरशाही के लिए लिपिक (क्लर्क) पैदा करने हेतु की गई थी।[3] जो कुछ पढ़ाया जाता था और परीक्षा के उपरांत जो उपाधि दी जाती थी, वह सामान्यतः एक नियत पाठ्यपुस्तक से पढ़े गए संकीर्णता से परिभाषित विषय-वस्तु का अनुपालन और प्रवीणता थी। प्रश्न करने की प्रवृत्ति खतरनाक थी और औपनिवेशक राज्य के लिए ज़रूरी दक्षताओं के अलावा अन्य दक्षताओं की शिक्षा ग़ैर ज़रूरी थी। 1947 के बाद शिक्षा का विस्तार एक बड़ी जनसंख्या तक हुआ (यद्यपि, दूर-दूर तक और जन-जन तक निश्चित रूप से नहीं) और राष्ट्र-निर्माण तथा औद्योगिक अर्थव्यवस्था दोनों के लिए महसूस की गई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए नियत पाठ्यक्रम में आंशिक सुधार किए गए।[4] लेकिन ज्ञान अभी भी दुर्लभ रहा और कुछ उसी तरह से समझा गया। अतः शिक्षा का प्राथमिक उद्देश्य नियत पाठ्यपुस्तकों के द्वारा ज्ञान को प्रदान करना और परीक्षाओं का मुख्य उद्देश्य इस तरह

---

2. इस अनुशंसा की व्याख्या 'विद्यार्थी की तनाव एवं चिंता से मुक्ति' वाले खंड में की गई है ।
3. निस्संदेह यह परंपरागत विचार है। जिसे कुमार (2005) ने चुनौती देते हुए कहा कि शिष्ट बनाने का उद्देश्य प्रधान था। जबकि मैकाले के प्रसिद्ध 'कार्यवाही पुस्तिका' (Minute) का कोई भी पाठक इसके उद्देश्य–संभ्रांत भारतीयों के एक वर्ग की रचना का, जो कम से कम उतना ही ब्रिटिश होगा, जितना कि ब्रिटिश अपने वैश्विक विचार में–की सच्चाई पर संदेह नहीं करेगा। कुमार इस तर्क को और आगे ले जाते हैं। वह ज़ोरदार तरीके से तर्क देते हैं कि परिणामों के परिप्रेक्ष्य में भी लिपिक नहीं, बल्कि रचनात्मक चिंतक (जैसे कि राष्ट्रवादियों की पहली पीढ़ी) पैदा हुए।
4. यह भी विडंबना है कि नए भारतीय लोकतंत्र को जो स्वरूप दिया गया, उसमें स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत बाद के दशकों में सरकारी कार्यालयों में लिपिकों के भर्ती की जितनी ज़रूरत थी, उतनी औपनिवेशिक काल में भी कभी नहीं थी।

के ज्ञान-प्रसारण की सफलता का परीक्षण करना रहा। राष्ट्र-निर्माण एवं औद्योगिक श्रमिक वर्ग के रचना की एक-साथ चलने वाली प्रक्रियाओं को समरूप बनाने की आवश्यकता पड़ती है और इसलिए विभेदीकरण या लचीलेपन के ऊपर भार नहीं डाला गया और व्यक्तिगत विद्यार्थी का कल्याण इस राजनीतिक एवं आर्थिक उद्यम के बाद आता था।

नए 'ज्ञान समाज' के उदय से बहुत पहले 1990 के दशक में ही यह शैक्षिक मॉडल दबाव में था। शुरुआती राज्य नीति-निर्माताओं की अपेक्षाओं के विपरीत विनिर्माण क्षेत्र के बजाय सेवाक्षेत्र ने लगातार उन्नति कर भारतीय अर्थव्यवस्था में अपना प्रभुत्व स्थापित किया और नए रोज़गार का सबसे बड़ा स्रोत बना। परिभाषा के अनुसार सेवाक्षेत्र के अंतर्गत दूसरे लोगों की विविध ज़रूरतों को लचीले और अलग तरीके से पूरा करना शामिल है—यह सत्कार में हो, परिवर्तन में हो, बीमा में हो, खुदरा व्यापार में हो या अन्य दूसरे क्षेत्र में हो। अगर मानकीकरण विनिर्माण क्षेत्र में सफलता की कुंजी है, तो सेवा क्षेत्र में सफलता की कुंजी भिन्न लोगों के साथ भिन्न व्यवहार है। यदि सामंजस्य औद्योगिक कर्मचारी का मूल गुण है तो समस्या-समाधान और विवेकपूर्ण सोच सेवा प्रदान करने वाले (एक बेयरा के स्तर तक भी) का मूल गुण है। सेवा-क्षेत्र में एक नीति स्पष्ट रूप से सभी पर लागू नहीं होती है और यह बहुत अलग प्रकार के शिक्षा दर्शन की माँग करता है।[5]

नयी 'ज्ञान-आधारित अर्थव्यवस्था' ने जिसमें भारत एक बड़े खिलाड़ी के रूप में उभरा है और जिसमें राजीव गांधी से शुरू करते हुए अन्य नेताओं ने बड़ी परिवर्तनकारी आशाओं को जगह दी है—पुराने 'अपर्याप्त ज्ञान प्रसार' मॉडल को भी गहरे दबाव में ला दिया। इंटरनेट ने प्रदर्शित किया है कि जानकारी, यहाँ तक कि उपयोगी जानकारी, दुर्लभ नहीं है। वास्तव में, यह माऊस के एक क्लिक पर, प्रायः बड़ी मात्रा में मुफ़्त उपलब्ध है। इसके लिए आवश्यकता है इस जानकारी के कुशल प्रसंस्करणकर्ताओं की जो छानबीन और मूल्यांकन करते हुए इसे प्राप्त कर सकें, इसका संग्रह तथा विश्लेषण कर सकें (क्योंकि इसमें बहुत सारी निरर्थक सूचनाएँ भी उपलब्ध होती हैं)। असंबद्ध आँकड़ों और बिखरे प्रतीत होने वाले आँकड़ों में अंतर्ज्ञान या तर्क द्वारा संबंधों की पहचान के लिए कुशल जनशक्ति की आवश्यकता होती है। अंततोगत्वा, प्राप्त तथ्यों को सुसंगत और तर्कपूर्ण तरीके से प्रस्तुत करते हुए वास्तविक जीवन की समस्याओं में उनका प्रयोग बताने की आवश्यकता होती है। इस तरह जो असंगठित आँकड़ों को उपयोगी ज्ञान में रूपांतरित कर सकते हैं, उनके लिए नौकरियाँ यहाँ देश में और विदेशों में भी उपलब्ध हैं।

इस मुद्दे पर दो पुरानी धारणाएँ व्याप्त हैं और जिन पर ध्यान देने की आवश्यकता है। पहली अपेक्षाकृत आसान धारणा जो एक दूसरे फोकस समूह के सदस्य के प्रश्न में अभिव्यक्त होती है—'आप किस दुनिया में रहते हैं? यह बुलबुला 2000 में फूट गया।' इसको उचित आदर देते हुए हमारा मानना है कि इसका रूप-रंग भव्य नहीं था। यद्यपि हम स्वीकार करते हैं कि, भारत की अर्थव्यवस्था के विकास में और विदेशी मुद्रा प्राप्त करने में अब इसका योगदान महत्त्वपूर्ण है और तेज़ी से बढ़ रहा है, फिर भी इसकी उल्लेखनीय उपस्थिति को संपूर्ण भारत में खासकर भारत-प्रायद्वीप के बाहर और शहरी भारत के बाहर महसूस किया जाना शेष है।

नए ज्ञान समाज में जानकारी निर्देशों का विस्तार सॉफ्टवेयर अभियंताओं की दुनिया और बी.पी.ओ. पेशेवरों से अधिक आगे तक है। इस पर ज़ोर दिया जाना चाहिए कि उपर्युक्त रेखांकित अधिकांश प्रक्रियाएँ—असंगठित आँकड़ों की खोज और छानबीन और इसका क्रमानुसार उपयोगी जानकारी में रूपांतरण—अब कई पारंपरिक व्यवसायों का केंद्र बिंदु है और यह प्रबंधकों, व्यवसाय सलाहकारों, डॉक्टरों, शोधार्थियों, अर्थशास्त्रियों और पत्रकारों

5. उसी तरह, राजनीतिक स्तर पर, क्षेत्रीय और भाषायी विविधता के महत्त्व ने राष्ट्र-निर्माण के समरूप मॉडल पर शीघ्र प्रधानता स्थापित कर ली।

तक ही सीमित नहीं है। औषधि और प्रयुक्त कारों के विक्रेता, संपत्ति एजेंटों, पर्यटन एजेंटों, कुरियर वालों, वकीलों, खुदरा विक्रेताओं और निस्संदेह निजी सचिवों सभी को इन कौशलों की पर्याप्त आवश्यकता होती है।[6] यही कारण है कि हमने 'ज्ञान समाजों' शब्द का प्रयोग एकवचन की बजाय बहुवचन में किया है। इन समाजों या पेशेवरों में सूचना-विश्लेषण एवं मूल्यांकन की इस प्रक्रिया की समानता के अलावा और दूसरा कुछ भी समान होने की संभावना नहीं है। चाहे इसे कोई विश्लेषणात्मक सोच, विवेकपूर्ण सोच या फिर समस्या समाधान कहे, यह मायने नहीं रखता (वास्तव में, आवश्यक कौशल इन सभी का मिश्रण है)। मुद्दा यह है कि इस प्रकार की अधिकांश सोचों की आवश्यकता आज के अधिकांश व्यवसायों में है। इन कुशलताओं के मिश्रण की बात छोड़ भी दें, *तो आज भारतीय स्कूलों के परीक्षार्थियों के लिए आवश्यक इन क्रियाकलापों में से एक को भी हम ढूँढ़ पाने में सफल नहीं रहे हैं।*

कुशल कर्मचारियों के अभाव के रूप में इसका नकारात्मक प्रभाव पहले से ही महसूस किया जा रहा है। इन नए और परंपरागत उद्योगों द्वारा इन समस्या-समाधानकर्ताओं और पार्श्व चिंतकों को पैदा करने में हम कितना अच्छा कर रहे हैं? अब हम उनकी बात करते हैं जिन्होंने समस्या-समाधान में सर्वोकृष्ट काम किया है। विशेषकर सॉफ्टवेयर प्रोग्रामिंग में नासकॉम (एन.ए.एस. एस.सी.ओ.एम.) ने यह भविष्यवाणी की है कि 2010 तक कई लाख कंप्यूटर प्रोग्रामरों की कमी पड़ेगी और यह अकेली सबसे बड़ी बाधा है, जिसका सामना उद्योग कर रहे हैं। आगे की जाँच-पड़ताल से कई कारणों का खुलासा होता है। भारत की बड़ी सॉफ्टवेयर कंपनियों में से एक कंपनी की प्रशिक्षण एवं नियोजन की मुखिया एस.ए. देशपांडे ने हाल ही में दिए गए एक इंटरव्यू में कहा कि "20 में से 19 स्नातक आवेदक और 7 में से 6 स्नातकोत्तर आवेदक भरती के लायक नहीं हैं। उनमें सामान्यतया समस्या-समाधान के अपेक्षित कौशल का अभाव तो है ही साथ ही इसकी प्रारंभिक जानकारी का भी अभाव है।" वे आगे कहती हैं, "वास्तव में हमें प्रोग्रामर के रूप में अभियंताओं की ज़रूरत नहीं है। हाई स्कूल के दौरान ही स्कूल छोड़ देने वाले भी हम रख सकते थे, यदि उनके पास सही कुशलता होती। हमारा सुझाव अभियंताओं को रखने की तरफ़ इसलिए है कि अधिकांश स्नातकों के विपरीत सामान्यत: उन्होंने सही ढंग के साथ समस्या हल करना सीखा है।" अगर 100 करोड़ से अधिक आबादी वाला देश हर साल समस्या हल करने की योग्यताओं से युक्त एक लाख युवा पैदा करने के लिए संघर्ष कर रहा है तो स्पष्ट रूप से इसकी शिक्षा व्यवस्था में सब कुछ सही नहीं चल रहा है। जिसके लिए केवल कॉलेज शिक्षा को दोष देना ठीक नहीं होगा। बहुत सारे मनोवैज्ञानिक सिद्धांत यह सुझाव देते हैं कि अगर आप 21 वर्ष की आयु में ढर्रे से बाहर सोचने वाले जिज्ञासु मस्तिष्क चाहते हैं तो उनके निर्माण की शुरुआत 17 साल की आयु से नहीं कर सकते, आपको यह प्रक्रिया 7 वर्ष की आयु से और ज़्यादा से ज़्यादा 11 वर्ष की आयु से शुरू करनी पड़ेगी।

हमने समस्या-समाधानकर्ताओं और गंभीर-चिंतकों के निर्माण के पीछे आर्थिक महत्त्व पर बल दिया है, क्योंकि शिक्षा में ही ऊर्ध्व गतिशीलता को उत्पन्न करने की क्षमता अन्य किसी भी प्रक्रिया से ज़्यादा होती है और उसके बदले में सुशिक्षित मानव शक्ति हमेशा तेज़गामी उत्पादकता वृद्धि की पूर्व शर्त रही है। लेकिन यदि कोई आर्थिक लाभ न हो तो भी अधिकांश राज्य व्यवस्थाएँ और सभ्य समाज, कम से कम लोकतांत्रिक राज्य, तीक्ष्ण बुद्धि वाले, जिज्ञासु तथा अपने लिए सूचनाओं का विवेकसम्मत उपयोग करने वाले नागरिक वर्ग के निर्माण का स्वागत करेंगे। भारत के विशेष संदर्भ में यह कल्पना करना मुश्किल है कि राज्य विश्लेषणात्मक और आलोचनात्मक कौशल रखने वाले नागरिकों के एक बड़े वर्ग के बिना ही गरीबी, पितृसत्ता और जातीय भेदभावों के विरुद्ध बहुत प्रगति कर रहा

6. आई.टी.सी. के 'ई-चौपाल' जैसी इंटरनेट संबंधी पहलकदमी और **एम एवं एम** के ऐसे प्रयास शीघ्र ही किसानों को भी इसके मूलभूत तत्वों को ग्रहण करने के योग्य बनाएँगे।

है। भारत की जटिल सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए ऐसे रचनात्मक द्रष्टाओं की आवश्यकता है जो अकेले या सामूहिक रूप से कार्य कर सकें। क्या हमारी शिक्षा और परीक्षा व्यवस्था ऐसे समस्या समाधान करने वाले नागरिकों के निर्माण की दिशा में काम कर रही है?

2.2 लिपिकों को तैयार करने से परे- परीक्षाएँ एवं सामाजिक न्याय

शिक्षा ही ऊर्ध्वगामी आर्थिक गतिशीलता का प्राथमिक इंजन है। कुछ पथ-प्रदर्शक उद्यमियों द्वारा बेंगलुरु और हैदराबाद में किए गए कार्य से आज भारत नए 'ज्ञान' युग में बौद्धिक ऊर्जागृह बनने की ओर अग्रसर है। अगर भारत की शिक्षा पद्धति ऐसी अभिवृत्ति और कार्य कुशलता वाले विद्यार्थी पैदा कर सके तो औषधि निर्माण एवं जैव प्रौद्योगिकी शोध, परामर्शी एवं सॉफ्टवेयर निर्माण के क्षेत्र में निश्चित ही सैकड़ों-हज़ारों उच्च वैतनिक संतुष्टिदायक नौकरियाँ देने की क्षमता रखते हैं। इन्हें विशेष रूप से उन विद्यार्थियों को प्रवेश देना चाहिए जो ग्रामीण एवं छोटे कस्बों में निवास करते हैं। यह इसलिए नहीं कि बड़ी मात्रा में 'ज्ञान कर्मियों' की आवश्यकता बड़े शहरों से पूरी नहीं की जा सकती *इसलिए कि सामाजिक न्याय की माँग है कि आर्थिक उन्नति के नवीन इंजन का लाभ छोटे कस्बे एवं ग्रामों में निवास करने वाली जनसंख्या को देर से ही सही पर दिया जाना चाहिए।*

भारतीय शिक्षा पद्धति के सामने यह एक बड़ी चुनौती है, जिसका हमें नयी सोच के साथ सामना करना होगा। हमें दफ़्तरशाही सोच को निकाल फेंकना चाहिए जो कि प्रगतिवादी होने का चोला ओढ़े हुए है किंतु, वास्तव में मानसिकता अभी भी औपनिवेशिक है। इस फोकस समूह के अध्यक्ष से एक पश्चिमी भारतीय राज्य के शिक्षा सचिव द्वारा पूछे तीखे प्रश्न से भी यही मानसिकता व्यक्त होती है। सचिव ने प्रश्न किया 'कि तब लिपिक कौन पैदा करेगा?' शायद यह सुनकर लार्ड मैकाले भी अपनी क़ब्र से मुस्करा दिया होगा।

एक अधिक गंभीर आपत्ति पुणे के ग्रामीण क्षेत्र के एक प्रधानाध्यापक ने व्यक्त की जिस पर सावधानीपूर्वक विचार आवश्यक है–"आज की बोर्ड परीक्षाएँ जनसंख्या के सभी वर्गों की ज़रूरतों को पूरा करती हैं–उन सब लोगों की भी जिनको कम सुविधा वाले स्कूलों में अच्छी शिक्षा प्राप्त नहीं है। संवेग को परिभाषित करने की बजाय उसके रूपांतरण जैसी समस्या का समाधान वह कैसे कर सकता है? क्या अधिक विद्यार्थी अनुतीर्ण नहीं होंगे? क्या विद्यालय छोड़ने की दर नहीं बढ़ेगी?" यह प्रश्न कठिन है, यहाँ उत्कृष्टता और समता एक-दूसरे के विपरीत प्रतीत होते हैं। पहले की कीमत पर ही दूसरे का विकास संभव दिखाई देता है। इससे पहले कि हम अग्रगामी खंडों में कोई संघठित हल खोजें। यहाँ कुछ अवलोकन दिए गए हैं जो एक प्रयास है 'समता बनाम उत्कृष्टता' के मुद्दे से परे जाकर सोचने का।

हमारा यह मानना है कि अब तक उपेक्षित ग्रामीण क्षेत्रों में कौशलों की शिक्षा और उत्कृष्टता का निर्माण ही एकमात्र टिकाऊ रास्ता है जो यथार्थ रूप में समता की ओर ले जाता है। अलाभान्वित क्षेत्रों एवं वर्गों को उत्तीर्णता प्रमाणपत्र देकर उन पर कोई कृपा नहीं की जा रही है, क्योंकि ये प्रमाणपत्र इनको न ही कोई नौकरी दिलाने में सक्षम हैं, न ही विश्वविद्यालयी स्तर पर सफलता।[7] शिक्षाविदों को तब खुश नहीं होना चाहिए जब किसी पिछड़े क्षेत्र के विद्यार्थी को 'उत्तीर्णता प्रमाणपत्र' मिल जाए, वरन् उस समय जब यह प्रमाणपत्र इन वर्गों के लिए किसी उच्च वेतन एवं दक्षता प्राप्त नौकरी का दरवाज़ा खोल दे। गरीबी के चक्र से हमेशा के लिए मुक्त कर दे। (आज ऐसी बात नहीं है। और सच पूछिए तो नियोक्ताओं को इसके लिए दोष नहीं

7. विद्यार्थी उत्तीर्ण भी नहीं हो रहे हैं। दसवीं कक्षा के लगभग 60% विद्यार्थी और बारहवीं कक्षा के लगभग 40% विद्यार्थी उत्तीर्ण नहीं हो पा रहे हैं।

दिया जा सकता है)। आज की दुनिया में आलाभान्वित एवं पिछड़े वर्गों को सफल बनाने के लिए कार्य कुशल बनाना आवश्यक है। एक व्यवस्था, जिसमें व्यावहारिक रूप से उपयोगी कौशल नहीं सिखाए जाने का वास्तविक नुकसान इन्हीं अलाभान्वित वर्गों को होता है; जबकि लाभान्वित वर्ग अपने वातावरण से ही इन सभी कौशलों को ग्रहण कर लेता है। समानता के नाम पर हमें इस असमानता को बढ़ावा नहीं देना चाहिए।

एक ऐसी शिक्षा एवं परीक्षा पद्धति आज की ज़रूरत है जो उन अलाभान्वित वर्ग के लोगों में समस्या निराकरण एवं विश्लेषण क्षमता का विकास करे, जो कि रोज़गार उन्मुख बाज़ार के लिए आवश्यक है। पाठ्यपुस्तक को रटना एवं रटे हुए को उगलना, रोजगार उन्मुख बाज़ार के लिए आवश्यक दक्षता नहीं है। इस प्रकार की शिक्षा को बढ़ावा देने वाली परीक्षा पद्धति, रचनात्मकता को समाप्त कर देती है। जैसाकि राष्ट्रीय सलाहकार समिति ने 'शिक्षा बिना बोझ के' में सुझाया है:

> *कक्षा दसवीं एवं बारहवीं के अंत में ली गई बोर्ड परीक्षाएँ नौकरशाही सिद्धांतों पर आधारित हैं और मूलत: स्वरूप में ग़ैर शैक्षिक रही हैं और मुख्य रूप से भय का स्रोत बनी हुई हैं क्योंकि इनके कारण बच्चों को अत्यधिक मात्रा में सूचनाएँ याद करनी पड़ती हैं ताकि वे परीक्षा में उन्हें तुरंत लिख सके।*[8]

आगे हम सुझाएँगे कि इस प्रकार की शिक्षा पद्धति न केवल पठन की रुचि को समाप्त करती है अपितु विद्यालय छोड़ने की दर को भी बढ़ावा देती है और इस प्रकार से आर्थिक पिछड़ापन बढ़ता है।

बिना समझे रटने पर आधारित परीक्षा एवं पठन-तंत्र विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करने में असमर्थ हैं । साथ ही उन्हें यह अनुभव कराने में भी असमर्थ रहा है कि यह ज्ञान उनके भविष्य के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है। सही अधिगम उसी वातावरण में संभव है, जब लोगों के सामने चुनौती पैदा की जा सके। सुकरात के अनुसार "शिक्षा पात्र को भरने का नहीं बल्कि ज्योति को प्रज्वलित करने का कार्य करती है।" सही युक्ति ज्योति को प्रज्वलित करना है और, इससे विद्यार्थियों को प्रोत्साहित किया जा सकता है। दूसरी ओर वह शिक्षा पद्धति और परीक्षा प्रणाली जो विद्यार्थियों को अनाकर्षक पुस्तकों में से तथ्यों के रटने पर ज़ोर देती हैं–ऐसे तथ्य जिनका धारणात्मक रूपरेखा से संबंध ही न हो और जो विद्यार्थी के अनुभव और धारणा से परे हो–निश्चित रूप से विद्यार्थियों को बाँधने में असमर्थ है। क्या इस व्यवस्था ने विद्यार्थी के विचारों को प्रतिबिंबित करने और उसको प्रमाणित करने की दिशा में या उसके स्वयं के वैश्विक विचार के संदर्भ में प्रयत्न किया है? या उसने सिर्फ़ अपरिचित संदर्भ पर आधारित अधकचरी सूचनाओं को एकत्रित कर विद्यार्थियों के गले के नीचे उतारने का प्रयत्न किया है? बड़ी मात्रा में बोर्ड द्वारा निर्दिष्ट पाठ्यपुस्तकें यही करती हैं। तब भी हम विद्यालय त्यागने की प्रवृत्ति के लिए विद्यार्थी की अरुचि को ही जिम्मेदार मानते हैं, जो कि विद्यार्थी पर दोष स्थानातांरित करने के समान है। तो क्या इस अरुचि का कारण विद्यार्थी से अधिक व्यवस्था में निहित मान लिया जाए? यह उस व्यवस्था में ही निहित है जो ज्ञान की एक ज्योति भी प्रज्वलित करने में असफल हो गया है। यदि यह एक चुनौतीपूर्ण शासन प्रणाली की अपेक्षा विद्यार्थी विशेष के अनुभव क्षेत्र में निहित होगा तब यह अधिक उत्साहजनक होगा और विद्यार्थी आते रहेंगे और शिक्षण उन्हें जीवन भर काम आने वाली दक्षता की ओर प्रेरित करेगा। (इसको कुछ सौ करोड़ से गुणित कर हम तीव्र आर्थिक प्रगति की नींव रख सकते हैं और उच्च जीवन स्तर और रचनात्मक प्रयासों की स्थापना कर सकते हैं) अगर हम इस संभावना को स्वीकार करते हैं तो स्कूली शिक्षा में दक्षता और नवाचार, समता के रास्ते में कोई रोड़ा नहीं

---

8. भारत सरकार (1993) 'शिक्षा बिना बोझ के', मानव संसाधन विकास मंत्रालय, शिक्षा विभाग, नयी दिल्ली द्वारा नियुक्त राष्ट्रीय शिक्षा सलाहकार समिति का प्रतिवेदन पृष्ठ-17.

डाल सकेगा–वास्तव में शैक्षिक उत्कृष्टता और प्रासंगिकता की नए तरीकों से खोज के बिना समता के बारे में सोचना भी असंभव है।

बेशक दक्षता शिक्षण और दक्षता प्रदान करने वाले अध्यापकों का शिक्षण सरल कार्य नहीं है। इसके लिए संसाधन, सही योजना, सजग मार्गदर्शन और कठिन परिश्रम की आवश्यकता होगी। इसका तात्पर्य उन विद्यार्थियों से भी सीधे जुड़ना है जिनका सजीव अनुभव भिन्न है। अत: पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकों और परीक्षाओं के विकेंद्रीकरण की आवश्यकता होगी। यह कार्य कठिन प्रतीत होता है परंतु कोई और रास्ता नहीं है। यदि समग्र देश को आगे बढ़ाना है तो यह करना आवश्यक है। यत्र-तत्र दक्षता के द्वीप बनाने की बजाय संपूर्ण देश में ही शिक्षा में सुधार किया जाए।[9]

2.3 बोर्ड परीक्षाएँ क्या जाँचती हैं?

यद्यपि संकीर्ण पाठ्यपुस्तकीय विषयवस्तु के लिए परीक्षाएँ विश्वसनीय मानी जा सकती हैं किंतु भारतीय स्कूल बोर्ड की परीक्षाएँ विस्तृत पाठ्यचर्या उद्देश्यों और वांछित दक्षताओं का मूल्यांकन केवल संज्ञानात्मक क्षेत्र में भी विरले ही कर पाती हैं।

परीक्षातंत्र के केंद्र में प्रश्नपत्र है। यह भले ही पुनरुक्त दावा प्रतीत हो परंतु बोर्डों द्वारा परीक्षा पत्रों की गुणवत्ता पर उचित ध्यान न दिए जाने को देखते हुए यह आवश्यक है। यद्यपि हाल ही के वर्षों में अधिकांश बोर्डों मे वास्तविक परीक्षा प्रशासन एवं सुरक्षा एवं परिणाम घोषणा की पद्धति में सुधार लाया गया है, उड़नदस्तों के बढ़ते प्रयोग से नकल करने की प्रवृत्ति में कमी आई है और अधिकतर बोर्ड परीक्षा के 45 दिन के भीतर ही परिणाम घोषित करने में सफल हुए हैं। परंतु, प्रश्नपत्र स्वयं ही निम्न कारणों से गंभीर समस्या बन कर रह गए हैं–

1. साल-दर-साल इन्हीं प्रश्नों (या इनके समान प्रश्नों) का दोहराव (जो कोचिंग संस्थाओं के हाथ का खिलौना बन गए हैं)।
2. अस्पष्ट वाक्यांश वाले प्रश्न या ऐसे प्रश्न जैसे 'इस पर टिप्पणी लिखो.....' (दोनों ही विद्यार्थी के पाठ्यपुस्तक से रटने और उगलने पर ही ज़ोर देते हैं)।
3. अत्यधिक लंबे प्रश्न, संभवत: पाठ्यपुस्तक के सभी अध्यायों को शामिल करने का असफल प्रयास करते प्रश्न जिससे कि वास्तविक चिंतन को कम समय मिलता है और विचारशील चिंतन के प्रति पक्षपात होता है।
4. पाठ्यपुस्तक की गहन जानकारी के परीक्षण के लिए इनका निर्माण किया जाता है (इसमें शामिल त्रुटियों और/या अनावश्यक सामग्री के साथ) न कि इसमें उपस्थित केंद्रीय संकल्पना या प्रतिस्पर्धात्मक गुण के परीक्षण हेतु।

हाल ही में मार्च, 2004 की 10वीं और 12वीं कक्षा के प्रश्नपत्र विस्तृत अध्ययन के लिए एकत्रित किए गए थे। देश के पाँच सबसे बेहतर कहे जाने वाले बोर्डों के प्रश्नपत्रों पर मुख्य रूप से ध्यान दिया गया। यह एक आँखें खोलने वाला प्रयास था। नीचे कुछ त्रुटिपूर्ण प्रश्नों के नमूने दिए गए हैं, जिनको उनकी त्रुटियों के प्रकारानुसार वर्गीकृत किया गया है : *पेड़ों के लिए जंगलों का खोना,* अर्थात् (अ) अस्थायी या ग़ैरज़रूरी सूचनाओं पर ध्यान केंद्रित करना या (ब) सूचना जो पूर्णत: गलत है या लेखक की दिमाग़ी उपज है।

'लघु उत्तरीय' प्रवृत्ति में परिवर्तन होना चाहिए, जो कि पुस्तकों में अस्पष्ट एवं सतही वक्तव्यों के रूप में दी गई जानकारी से कुछ ही ज़्यादा माँगती है, उदाहरण के लिए "पिट्यूटरी ग्रंथि का वजन क्या है?" इस संदर्भ में बेंगलुरु के एक पादरी ने कहा कि इस उदाहरण को सुस्पष्ट करना चाहिए। ग्रंथियों का अध्ययन उनके क्रियाकलापों के लिए किया जाता है, कदाचित इनकी बनावट के लिए

9. कुछ अन्य सुधार जैसे साथी समूहों के संदर्भ में शतमक श्रेणी का निर्धारण उदाहरणार्थ एक विद्यालय के सभी विद्यार्थियों और एक खंड के सभी विद्यार्थियों की निष्पत्ति को उचित संदर्भ में दर्शाना भी सामाजिक न्याय का कारण बनता है। संबंधित खंडों में इनकी चर्चा की गई है।

तो कतई नहीं। परंतु इस ग्रंथि के आकार के विषय में वर्णन पाठ्यपुस्तकों के लिए पूरी तरह से स्वीकार्य है (यद्यपि ग्रंथि की तुलना मटर के दाने से करना ज़्यादा उपयुक्त होगा बजाय 0.78 ग्राम कहने के)। परीक्षक के लिए यह प्रश्न पूछना सर्वथा अनुपयुक्त होगा। (वास्तव में यदि इसे पूछा जाए तो हमें शंका है कि पिट्यूटरी ग्रंथि के वजन के संदर्भ में हमारे समूह सदस्यों के मतों में भी अच्छा खासा अंतर होगा)।

वर्ष 2004 के प्रश्नपत्रों से अन्य उदाहरण जो इस वर्ग में शामिल हैं, नीचे दिए गए हैं–

बेनिटो मुसोलिनी के माता-पिता कौन थे? (0531)–यह अप्रासंगिक है– *संयुक्त राष्ट्र संघ में कितने सदस्य हैं?* (जी.एस.वाई. 59/3)–यह प्रश्न अस्थायी सूचना की माँग करता है।

आधुनिक मसीहा किसको कहा गया? (0562) यह कक्षा 10वीं के इतिहास एवं नागरिक शास्त्र के प्रश्न पत्र में पूछा गया था। 'आधुनिक मसीहा' शब्द का प्रयोग एक लेखक द्वारा पाठ्यपुस्तक में किया गया था (कदाचित कार्ल मार्क्स के संबंध में–जबकि ये गांधी भी हो सकते हैं) जो कि उस पुस्तक के बाहर कहीं भी प्रचलित नहीं है।

10वीं कक्षा के भूगोल का एक प्रश्न–*भारत में प्रचलित सिंचाई की पद्धति का वर्णन कीजिए* (0563)–से ऐसा प्रतीत होता है कि भारत में सिर्फ़ एक ही सिंचाई पद्धति प्रचलित है, कदाचित् इसलिए कि पुस्तक में मात्र एक पद्धति सुझाई गई है!

ऐसा कई बार होता है जब किसी पुस्तक से ग़लत तथ्य चुन लिए जाते हैं। एक प्रश्न–*हमारा सर्वाधिक आयात होता है–हांगकांग, इटली, कुवैत।* (0533) इसका कोई सही उत्तर ज्ञात नहीं है–पिछले 25 सालों में कम से कम एक वर्ष के लिए भी।

इस आम समस्या के समान कारण निम्न हैं-

1. परीक्षक द्वारा दक्षताओं एवं केंद्रीय धारणा के परीक्षण के बजाए पाठ्यपुस्तक के कोने-कोने की जानकारी का परीक्षण करना।
2. प्रश्नपत्र निर्धारकों में अनिश्चितता है कि क्या केंद्रीय है और क्या उपांत तथा परीक्षाओं की क्या भूमिका होनी चाहिए–दक्षताओं और केंद्रीय विषय-वस्तु एवं अवधारणाओं की समझ का आकलन करना या कि अस्पष्ट तथ्यों (जो कि प्राय: गलत पाए जाते हैं) की जानकारी को जाँचना।

गलत उद्देश्यीकरण अर्थात् एकीकृत और समाकलित ज्ञान को कई अलग-अलग विषयों में बाँटा जाना भी एक बड़ी समस्या है विशेषकर सामाजिक विज्ञान के संदर्भ में। निम्नलिखित प्रश्न एक अच्छे प्रश्न का उदाहरण प्रस्तुत करता है: *महारानी विक्टोरिया के 1858 के घोषणा पत्र में सहयोग, मित्रता और दंड की भावना को किस तरह देखा गया था? (जी.एस.वाई. 61/2)* परंतु अर्थपूर्ण निबंध पूछने के बजाय यदि यही प्रश्न इस तरह की भावनाओं के *'पाँच उदाहरण'* पूछता है तो उत्तर देने वाले की उद्यमिता को नष्ट कर देता।

किस तरह एक अर्थपूर्ण प्रश्न अपना अर्थ खो देता है जब अंकन की सहूलियत के लिए इसको टुकड़ों में विभक्त कर दिया जाता है, इस संदर्भ में 2004 के व्यापार अध्ययन का निम्नलिखित प्रश्न *(जी.एस.आई. 66/3)* एक अच्छा उदाहरण है–*कर्मचारियों की चयन प्रक्रिया में प्रयुक्त किन्हीं छह चरणों की संक्षेप में व्याख्या करें* (6 अंक)। वास्तव में चयन-प्रक्रिया का क्रम चरणों की संख्या से ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है। विद्यार्थी से कर्मचारियों की चयन-प्रक्रिया से संबद्ध निबंध एवं इसके महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर लिखने को क्यों नहीं कहा जाना चाहिए? क्या संबद्धता का स्थान परीक्षण में अंक देने की सहूलियत को ले लेना चाहिए? (6 बिंदु-6 अंक)

परीक्षण में अंक देने की सहूलियत (और पुस्तकों की सामग्री को प्रधानता दिया जाना) प्राय: दूसरी खामियों को जन्म देती है। वस्तुपरकता पर अत्यधिक ज़ोर खुले अंत वाले प्रश्नों में कमी लाता है जबकि सामग्री इसकी माँग करती है। विद्यार्थी को पाठ्यपुस्तक के कथनों को सिद्ध करने के लिए मजबूर किया जाता है जो कि आसानी से और लाभदायक ढंग से प्रदर्शन योग्य है।

1857 की क्रांति किस तरह राष्ट्रीय स्वतंत्रता की प्रथम लड़ाई थी? समझाइए। (जी.एस.वाई. 61/1)। यह विद्यार्थियों के लिए आज की मुख्यधारा के इतिहासकारों के विचारों को समाहित करने का कोई स्थान रिक्त नहीं छोड़ता जो यह कहते हैं कि भारतीय राष्ट्रवाद का 1857 की घटना से कदाचित ही कोई संबंध है और इस घटना का 1890 के पश्चात् के उपनिवेश विरोधी संघर्ष से तालमेल बिठाना कठिन है।

एक अन्य प्रश्न गांधीवाद की आज क्या प्रासंगिकता है? (जी.एस.वाई. 59/1) यह विद्यार्थी को बहस करने के लिए मजबूर करता है कि गांधीवाद प्रासंगिक है।

अक्सर अच्छे प्रश्नों में अनुपात का ध्यान न रखते हुए प्रश्न की गहराई के हिसाब से कम अंक निर्धारित किए जाते हैं। 2004 के प्रश्न पत्रों से उदाहरण–*क्या मार्क्सवाद आज भी प्रासंगिक है?* (2 अंक) (उत्तर मात्र 3 मिनट में) *(जी.एस.वाई. 59/3* राजनीति विज्ञान*)*

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् की राजनैतिक प्रवृत्तियों का सामान्य चित्रण प्रस्तुत करें? (725S)

भारतीय संविधान में दिए गए आदर्श और सिद्धांतों की व्याख्या कीजिए। (725S–4 अंक)

नीतिशास्त्र के विस्तार पर टिप्पणी लिखिए (730S – 5 अंक)

अंग्रेज़ी बोध के परीक्षण के लिए चुने गए गद्यांश प्राय: एक निश्चित वर्ग के विद्यार्थियों के लिए ज़्यादा सहायक सिद्ध होते हैं जो समृद्ध, शहरी और पश्चिमी बोलचाल में निपुण होते हैं। नीचे दी गई पंक्तियों पर ध्यान दें:

डी.एस.एल. प्रेषणीय अंग्रेज़ी 1/2: "अगर आपका क्रेडिट कार्ड अपने शहर में खरीदारी या मनोरंजन के लिए सहायक उप साधन के रूप में प्रयुक्त होता है तो आप उच्च क्रेडिट सीमा चाहेंगे। यहाँ विदेशी एवं निजी बैंक आपको उच्च क्रेडिट सीमा देंगे।"

क्या उन विद्यार्थियों के लिए यह ज़रा भी अर्थपूर्ण होगा जो इस वर्ग में शामिल नहीं हैं? एक अन्य गद्यांश, इस समय आर्कटिक सागर में व्हेल के शिकार का उल्लेख करता है कि कैसे "चर्बी को त्वचा से अलग करके उबाल दिया जाता है और मानव के लिए उपयोगी खाद्य बनाया जा सकता है।" यह मानव भूगोल के प्रश्न के रूप में ज़्यादा उपयुक्त होता बनिस्बत, अंग्रेज़ी की दक्षताओं के परीक्षण हेतु। गद्यांश जारी है..... "दोनों कॉड लीवर तेल और हैलिबट लीवर तेल (कॉड एवं हैलिबट मछलियों के नाम हैं।) बीमार बच्चों को दिया जाता है–ये तेल किसी भी दवाई की दुकान से खरीदे जा सकते हैं। ये पेट में मरोड़ पैदा करते हैं।" (0522)–यह वाक्य भी असत्य है। मात्र बड़े शहरों के दवा विक्रेता ही कॉड लीवर तेल रखते हैं और हैलिबट लीवर तेल की जानकारी उपलब्ध नहीं है।

यहाँ तक कि एक मूलभूत प्रश्न जैसे थियोसॉफिकल सोसायटी का मुख्यालय मद्रास में है (अड्यार, अन्नानगर, टी. नगर) (0562-10वीं कक्षा, इतिहास और नागरिक शास्त्र), यह एक निश्चित शहरी पूर्वाग्रह है।

अंतत: 2004 के प्रश्नपत्र के उन प्रश्नों पर निगाह डाली जाए जो अस्पष्ट हैं–

*भारत में उभरती हुई दलीय व्यवस्था पर एक आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिए (जी.एस.वाई.*59/2) [दलीय व्यवस्था तो भारत में 1947 से विद्यमान है। क्या यह प्रश्न इसमें नयी प्रवृत्तियों की ओर संकेत कर रहा है?]

आप एक पुस्तक से कुछ अच्छा कब प्राप्त करते हैं? (0551–अंग्रेज़ी प्रश्नपत्र 1, 10वीं कक्षा) [इस प्रकार का घटिया प्रस्तुतीकरण अंग्रेज़ी ही नहीं अन्य विषय में भी अक्षम्य होगा]

भूमंडलीकरण का अर्थ समझाइए और इस दिशा में उठाए गए कदमों की व्याख्या कीजिए? (DSL 32/1) (किसके द्वारा? कब?)

मंत्रियों की परिषद् में आरक्षित बल के रूप में कौन कार्य करता है? (0531) [न तो शब्द आरक्षित बल

का संविधान में प्रयोग किया गया है और न ही इसका किसी के द्वारा उल्लेख किया गया है जिसको हम जानते हैं और न ही प्रथम दृष्टया इसका अर्थ स्पष्ट होता है।]

'तीसरी दुनिया' के देशों का अस्तित्व में होना विश्व की अविभाज्यता पर प्रश्नचिह्न है–जाँच करें (725S) [ऐसे प्रश्नों का मूल्यांकन करके उन्हें निकालकर फेंक क्यों नहीं दिया जाता, यह एक मुख्य सरोकार है।]

विश्लेषण

उपर्युक्त प्रश्न निर्धारण/प्रश्नपत्र निर्धारण की समस्या के कारणों का निदान मुश्किल नहीं है। हाल के वर्षों में परीक्षा संपन्न कराने वाले बोर्डों ने अपना ध्यान प्रश्नपत्र लीक होने से रोकने पर केंद्रित किया है। प्रश्नपत्र लीक होने का खतरा बढ़ जाने के कारण प्रश्नपत्रों का पूरी क्षमता के साथ संपादन प्रायः कम हो पाता है। यह व्यवस्था मात्र लीक होने से रोकने के लिए ज़िम्मेदार है न कि गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए। नकल की रोकथाम के लिए प्रश्नपत्रों के कई सेट बनाने की आवश्यकता परीक्षा-प्रक्रिया पर अतिरिक्त बोझ बढ़ाती है। कुछ राज्यों में, जैसे पंजाब में एक-दूसरे के पीछे बैठे पाँच विद्यार्थी अलग-अलग प्रश्नपत्र हल करते हैं। अन्य राज्यों में भी कई प्रश्नपत्र तैयार किए जाते हैं परंतु अंतिम रूप से इस्तेमाल एक का ही किया जाता है, शेष प्रश्नपत्रों को सुरक्षित रख दिया जाता है। लेकिन दोनों स्थितियों में प्रश्नपत्र निर्धारकों की दशा खराब है। कई राज्यों में प्रश्नपत्र एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों के समूहों द्वारा बंद दरवाज़ों के पीछे तैयार किए जाते हैं। इसी प्रकार एक या एक से अधिक व्यक्ति एक ही दिन में प्रश्नपत्रों के कई सेट तैयार करते हैं (सामान्यतः 3 से 5) (सामान्य तौर पर परीक्षा से चार माह पूर्व) और उनको इस कष्ट के लिए लगभग 250 रुपये प्रति प्रश्नपत्र के मिलते हैं। उन्हें पुस्तक के अलावा कोई और सहायक सामग्री नहीं दी जाती है और न ही (निश्चित ही सुरक्षा कारणों से) सामग्री लाने की इज़ाज़त ही है। बाद में भी किसी संशोधन की कोई संभावना नहीं होती है। जिन परिस्थितियों में ये प्रश्नपत्र तैयार किए जाते हैं इसमें कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि प्रश्न प्रायः घिसे पिटे होते हों और उनकी यांत्रिक पुनर्प्रस्तुति की जाए। यह भी समस्या है कि ये प्रश्न सीधे किताबों से उठाए जाते हैं।

प्रश्नपत्र तैयार करने की प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण सुधारों की आवश्यकता है, जिस प्रकार महाराष्ट्र में सफलतापूर्वक कोशिश की जा चुकी है। (भले ही गुणवत्ता के संदर्भ में न होकर सुरक्षा के संदर्भ में) *प्रश्नपत्र निर्धारण* की अपेक्षा *प्रश्न निर्धारण* पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। विभिन्न समय में विभिन्न प्रश्नपत्र निर्धारकों द्वारा लिखे गए प्रश्नों को उनकी कठिनता के स्तर, विषय क्षेत्र और क्षमता के अनुसार श्रेणीबद्ध करना चाहिए। उसके उपरांत प्रत्येक प्रश्न को विशेषज्ञों के छोटे समूह द्वारा प्रश्नपत्र में एकत्रित किया जा सकता है। यह आवश्यक नहीं होना चाहिए कि प्रत्येक प्रश्न विशेषज्ञों द्वारा ही तैयार किया जाए। वास्तव में यह प्रक्रिया लोकतंत्रीकरण की माँग करती है। अच्छे प्रश्नों की माँग शिक्षकों से, कॉलेज के उसी विषय के प्राध्यापकों से, अन्य राज्यों के शिक्षाविदों से, पूर्व विद्यार्थियों तथा विद्यार्थियों से भी मँगाए जा सकते हैं। प्रश्न के चयन के और प्रश्नपत्र में प्रयुक्त होने के पश्चात् प्रश्न-लेखक को उचित मूल्य दिया जाना चाहिए–यह अच्छे और नवीन प्रश्न लिखने वालों के लिए प्रेरित करने का कार्य करेगा।

बहुविकल्पीय प्रश्नों में अप्रयुक्त अंतःशक्ति होती है। युक्तिसंगत ध्यान प्रकर्षकों के साथ सु-अभिकल्पित बहुविकल्पीय प्रश्न लघु उत्तरीय प्रश्नों से निम्नानुसार अधिक लाभप्रद हैं–

1. वे मशीन द्वारा जाँचे जाते हैं, इसलिए पूरी तरह विश्वसनीय हैं।
2. त्वरित परिणाम संभव है।
3. नकल की समस्या का निराकरण प्रश्नों को आगे-पीछे करके किया जा सकता है।

4. चूँकि प्रत्येक प्रश्न के लिए कम समय की आवश्यकता होगी अत: विस्तृत पाठ्यक्रम को शामिल किया जा सकता है।

5. कर्नाटक के डी.एस.ई.आर.टी. के विवरणों के अनुसार जहाँ हाल के वर्षों में 60 प्रतिशत बहुविकल्पीय प्रश्न प्रणाली कई विषयों के परीक्षण में अपनाई गई है, वहाँ विद्यार्थी में कम व्यग्रता, अधिक उत्तीर्ण प्रतिशत, ग्रामीण एवं नगरीय प्राप्तांक में फ़ासला कम पाया गया है।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि अच्छे बहुविकल्पीय प्रश्नपत्र तैयार करना एक कला है, जिसके लिए प्रशिक्षित परीक्षकों पर निर्भर नहीं रहा जा सकता। उनके लिए किसी विशेषज्ञ द्वारा प्रशिक्षण आवश्यक होगा। यह भी कह देना उचित होगा कि बहुविकल्पीय प्रश्न ही परीक्षा प्रणाली के लिए रामबाण औषधि नहीं है। ये भले ही विद्यार्थी की धारणात्मक समझ के स्तर और विद्वता की बारीकियों को समझ सकते हैं; परंतु केवल इसी प्रकार के प्रश्नों को सभी परीक्षाओं में नहीं दिया जा सकता। प्रश्नपत्र के द्वितीय भाग में खुले अंत वाले प्रश्नों के संयोजन से बहुविकल्पीय प्रश्न बेहतर काम करते हैं क्योंकि ये अभिव्यक्ति की परीक्षा करते हैं और इनसे तथ्यों के आधार पर अच्छे तर्क प्रस्तुत करने की क्षमता का परीक्षण किया जा सकता है।

जैसा कि हमने सुझाया ज़्यादातर विषयों के परीक्षण में बहुविकल्पीय प्रश्न और खुले अंत वाले प्रश्नों के संयोजन से (जो विद्यार्थियों को उनके उत्तर की रचना में सहायता करने के लिए श्रेणीबद्ध किए जा सकते हैं) सर्वव्यापी लघु उत्तरीय प्रश्न या वस्तुनिष्ठ प्रश्नों (जो (वर्तमान में परीक्षाओं में प्रधान है) को पूर्णत: समाप्त किया जा सकता है।

2.4 एक नीति सबके लिए उपयुक्त नहीं होती–लचीलेपन की ज़रूरत

परीक्षा प्रणाली में अधिक लचीलेपन की आवश्यकता है। जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति आवश्यक रूप से निश्चित कर लेता है कि शिक्षा एवं आकलन पद्धतियाँ सभी सामाजिक वर्गों के प्रति निष्पक्ष हों, ठीक उसी प्रकार हमें निश्चित कर लेना चाहिए कि ये विशेष प्रकार के शिक्षार्थियों के प्रति भेदभाव न करें। अनेक प्रकार के मनोवैज्ञानिक तथ्य सूचित करते हैं कि विभिन्न प्रकार के शिक्षार्थी असमान रूप से सीखते हैं और इसलिए विषयों में एक ही प्रकार की लिखित परीक्षा के द्वारा शिक्षार्थियों का परीक्षण करना उनके लिए अनुचित है, जिनकी वाचिक निपुणता लेखन से ज़्यादा अच्छी है या उनके लिए, जो कार्य बहुत धीरे करते हैं, परंतु गहन सूक्ष्मदृष्टि के साथ या उनके लिए, जो अकेले की अपेक्षा समूह में बेहतर कार्य करते हैं।

2.4.1 हम निम्न समाधान प्रस्तावित करते हैं–

1. *आकलन के विविध प्रकारों का उपयोग किया जाना चाहिए जिसमें मौखिक परीक्षण एवं सामूहिक कार्य मूल्यांकन भी शामिल होने चाहिए।* इसकी विस्तृत रूप से चर्चा सतत एवं व्यापक मूल्यांकन व शिक्षक सशक्तीकरण वाले खंड में की गई है। यहाँ बस इतना ही कहना है कि यद्यपि एक संवेदनशील शिक्षक सामान्यत: विद्यार्थियों की इन अप्रतिम योग्यताओं व कमज़ोरियों को पहचानता है, प्रत्येक शिक्षक को मूल्यांकन में विद्यार्थी की अंतर्दृष्टि का आकलन करना चाहिए तथा उसे समृद्ध करना चाहिए और आंतरिक मूल्यांकन की पद्धति को सशक्त करना चाहिए। साथ ही विद्यालयों द्वारा इसके दुरुपयोग को रोकने के लिए (जैसाकि आजकल प्रयोगात्मक परीक्षा में होता है।) आंतरिक मूल्यांकन को आवश्यक रूप से सापेक्षत: क्रमबद्ध करना चाहिए न कि निरपेक्ष मापदंड के आधार पर और इसे बाह्य परीक्षा में प्राप्त अंकों के आधार पर नियमित किया जाना चाहिए। अनिवार्य यादृच्छिक प्रतिचयन द्वारा आंतरिक मूल्यांकन का बाह्य नियमन वर्तमान में आश्चर्यजनक रूप से अनुपस्थित है। इसके परिणामों का अनुमान इस प्रकार लगाया जा सकता है– कि विद्यालयों द्वारा व्यवस्था का दुरुपयोग सर्वव्यापी है और विद्यार्थियों की इसमें बहुत कम आस्था है, और बोर्ड इसे जानते हुए सामान्यत:

आंतरिक रूप से निर्धारित अंकों को पृथक् रूप से प्रस्तुत करता है, इस प्रकार उनकी उपेक्षा को बढ़ावा देता है।

2. *प्रत्येक व्यक्ति से प्रत्येक विषय की पूरी जानकारी की अपेक्षा उचित नहीं है।* कोई व्यक्ति विभिन्न प्रकार के विद्यालयों एवं विद्यार्थियों के लिए विभिन्न प्रकार की पाठ्यचर्याओं के न होने की आवश्यकता को उचित मान सकता है। (जैसाकि महाराष्ट्र में अत्यधिक बल देकर कहा गया है कि एक ही परीक्षा बोर्ड के भीतर श्रेणीबद्धता पैदा होगी और विद्यार्थियों के दो वर्ग बन जाएँगे) लेकिन जैसाकि हम विद्यालयों व विद्यार्थियों को अपने विषयों के चयन में स्वतंत्रता देते हैं उसी तरह उन्हें विषयों में एक या दो स्तरों के चयन का विकल्प भी दिया जाना चाहिए। ऐसा भी कहा जा सकता है कि छह विषयों में से उच्च स्तर पर 3 या 4 परीक्षाएँ तथा मानक स्तर पर 3 या 2 परीक्षाएँ देने के लिए प्रत्येक विद्यार्थी को छूट मिलनी चाहिए। हालाँकि समान पाठ्यचर्या पर आधारित उच्च स्तर की परीक्षाओं में उच्च कोटि की निपुणता का परीक्षण के लिए विस्तृत अवयव हो तथा मानक स्तर की परीक्षाओं की अपेक्षा अधिक गति, वैचारिक समझ और अंतर्दृष्टि की गहनता की माँग करे।

उपर्युक्त सुधार न केवल, विविध प्रकार के शिक्षार्थियों की मदद करेंगे और विभिन्न प्रकार के परीक्षणों की अनुमति देंगे बल्कि इससे शिक्षार्थियों के तनाव में भी कमी आएगी। यह सर्वविदित है कि विद्यार्थी अपने सबसे कठिन विषय की परीक्षा के समय व उससे पूर्व अत्यधिक तनाव का अनुभव करते हैं।

दूसरे, यह सुधार जब अधिकतर बोर्डों में निम्नतम-उत्तीर्ण-दरों के साथ दो विषयों—गणित व अंग्रेज़ी पर लागू किया जाएगा, तो कुल-उत्तीर्ण दरों में भी वृद्धि होगी। हमारे विचार से दसवें वर्ग की मानक-स्तरीय गणित उन विद्यार्थियों के लिए निर्मित की जाएगी जो गणित व विज्ञान को आगे की कक्षाओं में जारी नहीं रखेंगे। यह संगणन, बीजगणित, क्षेत्रफलों, वित्तीय गणित और व्याख्यात्मक सांख्यिकी की मात्रात्मक पद्धति पर सकेंद्रित रहेगी, जो विद्यार्थियों के जीवन को समृद्ध करेंगे। गणित में ही त्रिकोणमिति, समुच्चय सिद्धांत, लघुगणक, ज्यामितीय प्रूफ़, आयतन और अनेक तकनीकी विषय या तो केवल उच्च स्तरीय गणित (यदि दो पाठ्यक्रम हों) में सम्मिलित होंगे या मानक-स्तरीय प्रश्नपत्र (यदि समान पाठ्यक्रम हो) के 20 प्रतिशत से कम को समाविष्ट करेंगे। उसी तरह अंग्रेज़ी की तीन स्तरों पर परीक्षा ली जा सकेगी—सबसे आधारभूत स्तर पर अंग्रेज़ी में संप्रेषण व समझ की योग्यता को जाँचा जाएगा तथा सारगर्भित मौखिक परीक्षण भी एक घटक के रूप में होगा। इंटरमीडिएट स्तर पर संप्रेषण व समझ की योग्यता के अतिरिक्त मानकीकृत अंग्रेज़ी की एक परीक्षा होगी जिसमें व्याकरण व वर्तनी की शुद्धता तथा वाक्य रचना आदि का समावेश होगा। उच्चतम स्तर पर साहित्य संबंधी विश्लेषण की कुशलता की भी जाँच होगी। उसी प्रकार की एकसमान तीन-स्तरीय पद्धति सभी भाषाओं के लिए स्वीकार की जाएगी। प्रत्येक विद्यार्थी से उच्च स्तर पर एक भाषा और किसी भी स्तर पर अन्य भाषा (या दो भाषाओं, कुछ राज्यों में प्रचलित) के परीक्षण की अपेक्षा की जानी चाहिए।

3. *परीक्षा के समय में लचीलापन:* यदि यह स्वीकृत है कि उच्चतर माध्यमिक शिक्षार्थी अलग-अलग गतियों से सीखते हैं, तो पाठ्यक्रम के दो वर्षों के पश्चात् सभी विषयों में उनकी परीक्षा लेने के पीछे प्रशासनिक सुविधा के अतिरिक्त और कोई कारण नहीं है। हम परामर्श देते हैं कि सभी विषयों में एक साथ परीक्षा लेने के स्थान पर विद्यार्थियों को ग्यारहवीं (या माध्यमिक स्तर के लिए नौवीं) के अंत तक कुछ विषयों (दो विषयों तक) में परीक्षा देने की अनुमति हो। इससे न केवल बाद के एक वर्ष का तनाव कम होगा, बल्कि दीर्घकालिक

अधिगम भी हो सकेगा और परीक्षा बोर्ड को भी कम असुविधा होगी। विद्यार्थियों को अन्य दो परीक्षाओं को, 12वीं (या 10वीं माध्यमिक परीक्षा) के मध्य में देने की अनुमति देने से, बोर्ड को वर्ष में एक बार के कार्यक्रम वाली परंपरा (पुनः परीक्षा के सिवाय) से हटना होगा, लेकिन यह अधिक शिक्षार्थी के लिए अनुकूल तरीकों को बढ़ावा देगा।

सामान्यतः प्रत्येक विद्यार्थी को सभी विषयों में उत्तीर्ण होने के लिए (या अंकवर्धन के लिए) तीन वर्ष (समय) देना चाहिए। किसी एक परीक्षा-सत्र में विद्यार्थियों को इस निर्णय का अधिकार होना चाहिए कि वे परीक्षा न दें, सभी परीक्षाएँ दें अथवा कुछ परीक्षाएँ दें। इसके अतिरिक्त यह सुधार न केवल विद्यार्थी के स्वयं तैयार होने पर अधिगम और परीक्षण की अनुमति देता है। (ऐसा नहीं कि जब बोर्ड का आदेश हो; एक नीति सबके लिए उपर्युक्त के सिद्धांत पर) वरन् सामाजिक न्याय की ओर भी काम करता है। एक विशाल संख्या में परीक्षार्थी, परीक्षा की तैयारी करते समय पूर्णकालिक या अर्धकालिक नौकरी भी करते रहते हैं। विशाल संख्या में ये विद्यार्थी उत्तीर्ण ही नहीं हो पाते क्योंकि वे न ही परीक्षा के पूर्व एक सप्ताह से अधिक का अवकाश प्राप्त कर पाते हैं और न ही उन्हें सभी विषयों की तैयारी के लिए पर्याप्त समय मिल पाता है। उदाहरणतः यदि उन्हें तीनों सत्रों में प्रत्येक सत्र में दो विषयों को पूरा करने दिया जाए तो अपने प्रदर्शन में अधिक सुधार कर पाएँगे।

समय के साथ-साथ यह पद्धति धीरे-धीरे विद्यार्थियों की माँग पर आधारित परीक्षा पद्धति में बदलती जाएगी। (सामान्यतः अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रायः इस तरह की परीक्षाएँ ऑन लाइन होती हैं) जब विद्यार्थी परीक्षा देने के लिए तैयार हों; न कि पद्धति की सुविधा के आधार पर हम एक मार्गदर्शी योजना के रूप में कंप्यूटर-विज्ञान में इसकी शुरुआत तथा भविष्य में गणित व भौतिकी परीक्षाओं में विस्तार का सुझाव देते हैं।

4. *प्रदर्शन का विस्तृत प्रतिवेदन* (या सेब की सेबों से तुलना करना)—अंकतालिका पर प्रत्येक विषय में निरपेक्ष अंकों का श्रेणी के साथ सापेक्षिक प्रदर्शन की सूचना देना, अब कंप्यूटरीकृत पंजीकरण के कारण, बहुत सरल है। हम सुझाव देते हैं कि शतमक श्रेणी (अ) इस विषय में संपूर्ण अभ्यर्थियों के (ब) उस विद्यालय के सभी अभ्यर्थियों के, और (स) उस खंड के सभी अभ्यर्थियों के संबंध में दी जानी चाहिए। गुणवत्ता में निम्न शैक्षिक संरचना के साथ वंचित क्षेत्रों से आए विद्यार्थी जो 70 प्रतिशत (निरपेक्ष अंक) प्राप्त करते हैं अपने खंड में उन्हें 95 प्रतिशत पर शतमक श्रेणी प्राप्त हो तो यह उल्लेखनीय है। दक्षिणी मुंबई के एक विशिष्ट विद्यालय का विद्यार्थी, जो 70 प्रतिशत अंक प्राप्त करता है, उसी विद्यालय में केवल 50 प्रतिशत की शतमक श्रेणी व खंड में केवल 60 प्रतिशत की शतमक श्रेणी प्राप्त कर सकता है।

हालाँकि यह सुनिश्चित करने का कोई उपाय नहीं है कि महाविद्यालयों, छोटे महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों के व्यावसायिक पाठ्यक्रम, अपनी प्रवेश प्रक्रियाओं में सापेक्षिक योग्यता के इन प्राचलों पर ध्यान देंगे (और यह कहना कठिन है कि शिक्षा में योग्यता एक सापेक्षिक विचार नहीं है)। प्रयोक्ताओं के लिए इस शतमक श्रेणी के आँकड़ों को सुलभ (अभिगम्य) बनाना महत्त्वपूर्ण है।

2.5 परीक्षा संबंधी तनाव व चिंता में कमी

हमें याद रखना चाहिए कि परीक्षाएँ, तंत्र की सुविधा के लिए निर्मित कृत्रिम परिस्थितियाँ हैं, न कि व्यक्तिगत शिक्षार्थी के लिए। उन पर विश्वास करना पड़ता है क्योंकि अधिक शुद्ध मूल्यांकन, सामान्यतः मूल्य व मानव शक्ति नियंत्रण के कारण अव्यावहारिक है। उनकी

कृत्रिमता व समयबद्धता तथा 'एक प्रयत्न' को देखते हुए, आश्चर्य नहीं है कि वर्तमान प्रणाली में परीक्षाएँ चिंता उत्पन्न करती हैं। जैसाकि, विद्यार्थियों का पूर्व-बोर्ड और बोर्ड की परीक्षाओं से गंभीर रूप से प्रभावित होने तथा स्वयं एवं दूसरों को चोट पहुँचाने की नवीन समाचार सूचनाओं में वृद्धि होना, परेशान कर देता है। हम इस चिंता को स्वयं रोग के रूप के बजाए, परीक्षाओं से पीड़ित रुग्णता के चिह्न के रूप में देखते हैं।

जैसाकि सुझाव दिया गया है, आंतरिक मूल्यांकन की एक अधिक विस्तृत और विश्वसनीय पद्धति की ओर संचरण, बाह्य परीक्षाओं के कारण उत्पन्न तनाव को कुछ हद तक दूर कर देगा। अति सरल मानक-स्तर पर अपने अधिक चिंता प्रेरक विषयों में से दो या तीन विषयों के चुनने की सुविधा और अपने सुविधाजनक समय को चुनने की स्वतंत्रता से विद्यार्थियों को सहायता पहुँचाएगा।

इसके अतिरिक्त हम परीक्षागत चिंता तथा उसके दूषित परिणामों को कम करने के लिए निम्नलिखित युक्तियाँ प्रस्तुत करते हैं–

1. तनाव का एक बड़ा हिस्सा, प्रश्नपत्रों की अत्यधिक लंबाई से संबंधित होता है। अपेक्षाकृत छोटी परीक्षाएँ, जिनमें कम समय मिलता है और समय-समय पर अवकाश भी मिलता है, सहायक होंगी। परीक्षा की अवधि की दीर्घता (सामान्यत: 3 घंटे प्रति विषय) कम होनी चाहिए (उच्चस्तरीय परीक्षाओं के लिए 2.5 घंटे तथा मानक-स्तरीय परीक्षाओं के लिए 2 घंटे तक)। याद रहे, कि पाठ्यक्रम के सभी खंडों को सम्मिलित करने की, परीक्षक की चिंता भ्रामक होती है। महत्त्वपूर्ण यह है कि अपेक्षित उत्तरों की संख्या व देय समय में उत्तरों की मात्रा में कमी की जानी चाहिए। परीक्षाएँ ऐसी होनी चाहिए, जिसे सभी विद्यार्थियों में 95% विद्यार्थी आसानी से पूरा कर सकें और एक शीघ्र पुन:विलोकन के लिए समय भी बचा सकें। मार्गदर्शी परियोजनाएँ आरंभ की जानी चाहिए, जिसमें परीक्षाओं में समय की सीमा न हो।
2. ऐसे प्रश्न जिसमें विद्यार्थी की पाठ्यक्रम के दो या अधिक क्षेत्रों की जानकारी जाँची जा सके, अपेक्षाकृत कम समय में अधिक विस्तृत परीक्षण कर सकेंगे, एक अच्छे शैक्षिक अभ्यास का संस्थापन हो सकेगा जिसमें विद्यार्थी विभिन्न अध्यायों की सामग्री के बीच प्रासंगिक संबंध बना पाएँगे। (यह अधिक आवश्यक कला है लेकिन भारतीय बोर्ड की परीक्षाओं में इसका विरले ही उपयोग होता है। यदि हम प्रो. यशपाल के दावे को स्वीकार करते हैं तो शिक्षा पार्श्विक बंध बनाती है, "मस्तिष्क में ज्ञान की परिस्थिति की" रचना करती है, तो ऐसे प्रश्न निश्चित रूप से आवश्यक हैं।)
3. लघु उत्तरों से बहुविकल्पीय प्रश्नों की ओर बदलाव पर ज़ोर जो मूल अवधारणाओं की वास्तविक समझ की जाँच कर विद्यार्थी की चिंता कम करने में मदद करते हैं। साथ ही शीर्ष पर अधिक अंक प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों में भेदीकरण को अनुमति भी देते हैं। (पूर्व भाग में पहले ही विवेचित)
4. यदि विद्यालय में प्राथमिक सुविधाओं की कमी न हो तो विद्यार्थियों को, अतिरिक्त यात्रा व अपरिचित वातावरण के कारण उत्पन्न तनाव को कम करने के लिए, अपने गृह-विद्यालय में परीक्षा देने की छूट होनी चाहिए (बाद के भाग में विवेचित)।
5. स्मृति परीक्षण से दूर दक्षताओं के परीक्षण पर ज़ोर के रूप में बदलाव निश्चित रूप से तनाव को कम करेगा, साथ ही परीक्षाओं की वैधता बढ़ाने में सहयोग करेगा। खुली-पुस्तक परीक्षाओं की ओर दीर्घकालिक बदलाव पर विचार किया जा सकता है और जो इस रिपोर्ट के अंत में दी गई प्रायोगिक परियोजनाओं में से एक है। इसी बीच रसायन विज्ञान के विद्यार्थियों को आवर्त-सारणी व बंध-कोण-मान देने चाहिए; भौतिकी व गणित के परीक्षार्थियों को कुछ त्रिकोणमितीय विशिष्टताएँ व अन्य सूत्र दिए जाने चाहिए नहीं तो उन्हें याद रखना पड़ता है। प्रश्नों का केंद्रबिंदु, उसी तरह,

मात्र "प्लग-इन" प्रकार के प्रश्नों से आदर्श अनुप्रयोगों की ओर संचरित होना चाहिए। ऐतिहासिक प्रश्नों में, "भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की प्रथम बैठक कहाँ" के स्थान पर "महत्त्वपूर्ण कांग्रेस अधिवेशनों के महत्त्व पर आधारित प्रश्नों" से विद्यार्थियों का परीक्षण हो। "1857 की घटना के 8 कारणों का उल्लेख करें" (4 अंक) जैसे प्रश्न घबराहट की घंटी बजा देते हैं (विद्यार्थी चिंताग्रस्त हैं कि वह पाँच से ज़्यादा याद न रख सकें, और तब उन्हें घबराहट में पाँच भी याद नहीं आते।) के स्थान पर, खुले-अंत वाले प्रश्न आँकड़ों से युक्त अनुक्रिया व विश्लेषण को बढ़ावा देने वाले प्रश्न होने चाहिए। उदाहरण के लिए, इस केस में, आज़मगढ़ की घोषणा, 1857 से तीन पैराग्राफ़ उपलब्ध कराए जाएँ तथा विद्यार्थियों से एक खुले-अंत वाला प्रश्न पूछा जाए; "इस सार व अपनी जानकारी के आधार पर विवेचित करें कि 1857 की घटना को 'महान क्रांति', भारतीय स्वाधीनता के प्रथम युद्ध के रूप में वर्णन किया जा सकता है अथवा 'सिपाही विद्रोह' के रूप में।" यह केवल अति-मानवीय और अपेक्षाकृत निम्न तनाव-उत्प्रेरक ही नहीं होगा; अपितु विद्यार्थियों को वाद-विवाद में अपने विचारों को स्थापित करने और उच्चस्तरीय व्याख्यात्मक निपुणता के प्रदर्शन के लिए प्रेरित करेगा।

6. *अनुत्तीर्ण शब्दावली का निष्कासन :* हम अनुशंसा करते हैं कि 'अनुत्तीर्ण' शब्द अंकतालिका पर उपस्थित न हो और इसके स्थान पर इन वाक्यांशों का प्रयोग हो जैसे 'असंतोषजनक', अथवा 'बेहतर' है, 'वांछित स्तर की प्राप्ति के लिए अधिक श्रम की आवश्यकता'। 'अनुत्तीर्ण' शब्द सामाजिक कलंक को दर्शाता है। प्राय: शिक्षण की और पाठ्यपुस्तकों की उपलब्धता जैसी व्यवस्थागत कमियों के लिए विद्यार्थियों को दोषी ठहराया जाता है।

7. *फिर से परीक्षा देने की व्यवस्था के द्वारा उत्तीर्ण/अनुतीर्ण जैसी अवधारणाओं को हटाना :* इस तथ्य से बचा नहीं जा सकता है कि बोर्ड परीक्षाओं का उद्देश्य, अध्ययन प्रक्रिया की संतोषजनक समाप्ति को प्रमाणित करना है। कुछ व्यक्ति विशेष हमेशा होंगे जो ऐसी संतोषजनक समाप्ति को सिद्ध न कर सकें। उन्हें एक या अधिक परीक्षाओं को पुन: देने के कई अवसर उपलब्ध कराने चाहिए (तीन या पाँच वर्षीय अवधि में भी) जब तक वे प्रमाणपत्र के लिए श्रम करते रहें। इस अवसर की समाप्ति के बाद भी वे पुन: संपूर्ण परीक्षा (सभी विषयों में) देने के लिए स्वतंत्र हों। इसलिए कि जबकि एक परीक्षा में उत्तीर्ण होना संभव न हो, तो भी कोई निश्चित रूप से (स्थायी रूप से) 'अनुतीर्ण' नहीं होता है। हम विश्वास करते हैं कि उपर्युक्त विशिष्टता अर्थपूर्ण है, और उत्तीर्ण/अनुतीर्ण विषय पर बोर्ड की वर्तमान समझ से अनिवार्य रूप से अलग है।

8. फोकस समूह स्वीकार नहीं करता है कि आज बोर्ड एकाकी या सामूहिक रूप से यह निश्चित करने की ओर काम करते हैं कि उत्तीर्णांक अर्थपूर्ण है तथा ध्यानपूर्वक अंशशोधित कट-ऑफ़ (cut-off) पाठ्यक्रम के संतोषजनक समाप्ति को प्रमाणित करने के लिए निर्मित किया गया है। कुछ बोर्डों के कुछ विषयों में कट ऑफ़ मार्क्स (30%, 33% या जो भी हो) प्राप्त करना सापेक्षतया नगण्य है और यहाँ तक कि न्यूनतम कुशलता की प्राप्ति का आश्वासन भी नहीं है। अन्य बोर्डों के अन्य विषयों में (या समान बोर्ड में ही) न्यूनतम कुशलता वे विद्यार्थी भी प्राप्त कर लेते हैं जिन्हें 25% अंक प्राप्त होते हैं। सभी विषयों व सभी बोर्डों में प्रश्नपत्र ऐसे निर्मित होने चाहिए कि उत्तीर्णांक केवल मनमाने ढंग से निर्धारित किए गए कट ऑफ़ ही न हों, बल्कि वास्तविक रूप से अपेक्षित कुशलता की प्राप्ति का मूल्यांकन हों।

9. परीक्षाएँ बुराई हैं–इस सिद्धांत को मानते हुए 'जहाँ अत्यंत आवश्यक न हो वहाँ कोई परीक्षा नहीं'

होनी चाहिए। *दसवीं श्रेणी की बोर्ड परीक्षाएँ तुरंत ऐच्छिक बना देनी चाहिए।* दसवीं कक्षा का विद्यार्थी, जो उसी विद्यालय में 11वीं कक्षा को ज़ारी रखने का इरादा रखता है, और किसी तत्काल उद्देश्य के लिए बोर्ड का प्रमाणपत्र नहीं चाहता, बोर्ड परीक्षा के स्थान पर विद्यालय द्वारा संचालित परीक्षा देने के लिए स्वतंत्र होना चाहिए (और प्रोत्साहित किया जाना चाहिए)।

प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा के विविध स्तरों पर बोर्ड परीक्षाओं को सम्मिलित कराने वाले विभिन्न बोर्डों के हाल ही के प्रस्ताव, कितने ही अच्छे क्यों न हों, अति-परीक्षण और अकारण चिंता के दुष्चक्र को फिर भी तीव्र करेंगे, साथ ही शिक्षण व अन्वेषण के आनंद को क्षति पहुँचाएँगे। हम प्रस्तावित करते हैं कि ऐसी योजनाओं को तुरंत समाप्त कर देना चाहिए। यदि कुछ विद्यालय, उचित व अर्थपूर्ण वर्षांत परीक्षाओं को कराने के अयोग्य हैं तो इसका कारण है शिक्षक प्रशिक्षण में–बोर्ड के द्वारा अत्यंत न्यून निवेश–बोर्ड द्वारा विद्यालय–आधारित मूल्यांकन में सुधार लाने की दृष्टि से शिक्षण प्रशिक्षण में न्यूनतम निवेश किया गया क्योंकि कड़ी पाठ्यपुस्तक-आधारित परीक्षा ने सीखने की प्रक्रिया में अध्यापक को मात्र परिशिष्ट बना दिया है। अध्यापकों के पुनः सशक्तीकरण व बोर्ड के निशक्तीकरण के प्रयास होने चाहिए न कि शिक्षा प्रणाली में आगे बोर्डों की शक्ति के विस्तार के।

2.6 परीक्षा प्रबंधन

हाल के वर्षों में परीक्षा प्रबंधन के गैर-शैक्षिक पक्ष में सार्थक सुधार हुआ है। कुछ राज्यों में कंप्यूटर प्रौद्योगिकी के सहयोग से पंजीकरण से लेकर परीक्षा प्रवेशपत्र के निर्माण व अंकतालिकाओं के निर्माण तक की संपूर्ण प्रक्रिया अधिकांशतः त्रुटिरहित हो गई है। अधिकांश राज्य अब अंतिम परीक्षा के 45 दिनों के भीतर परिणाम घोषित कर देते हैं। प्रौद्योगिकी ने अनाचार की रोकथाम में भी सहयोग दिया है, जैसे प्रतिरूपण (प्रवेशपत्र व अंकतालिका दोनों में स्कैन किए गए छायाचित्र), प्रतिलिपीकरण या नकल (इलेक्ट्रॉनिक आँखें) और परीक्षक पर प्रभाव (एनक्रिप्टेड बारकोड)।

हम नीचे उन अच्छे कार्यों की सूची दे रहे हैं और अनुशंसा करते हैं कि इसका पालन सभी राज्यों को करना चाहिए। यह मात्र चयनित सूची हो सकती है। हम कुछ ऐसे "श्रेष्ठ कार्यों" से एक अधिक विस्तृत सूची (दस्तावेज़) तैयार करने के लिए "सी.ओ.बी.एस.ई." (कोबसे) से अनुरोध करते हैं कि यह छोटे बोर्डों के लिए बहुमूल्य होगा और बल्कि कीर्तिमान से युक्त बोर्ड भी महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों के कुछ राज्य बोर्डों के प्रयोगों (प्रतिक्रियाओं) का अध्ययन कर बहुत कुछ प्राप्त कर सकते हैं।

2.6.1 पूर्व-परीक्षा

1. *परीक्षा केंद्रों का चयन*-विद्यार्थियों की यात्रा सुविधा सर्वोपरि होनी चाहिए। विद्यार्थियों से, परीक्षा के समय उनके विद्यालय की प्रतिदिन यात्रा से अत्यधिक यात्रा करने की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए। अगर विद्यालय काफ़ी बड़ा हो और केंद्र बनने के लिए आवश्यक सुविधाओं से युक्त हो, जिससे विद्यार्थी परिचित वातावरण में अपनी परीक्षा के लिए स्वयं उपस्थित हो सकें तो इससे विद्यार्थियों के तनाव में कमी आएगी। विद्यालय-आश्रित अनाचार को रोकने के लिए निरीक्षण दल, जैसे भी हो अधिकांशतः या पूर्णतः उसी स्थान के किसी अन्य विद्यालय से होने चाहिए।

   केरल जैसे कुछ राज्यों में विद्यार्थियों को अपने ही विद्यालय में परीक्षा देने की सुविधा प्राप्त है, जबकि प्रत्येक विद्यालय एक केंद्र भी है। हालाँकि यही हमारा अंतिम लक्ष्य होना चाहिए परंतु हमने यह भी देखा है कि विभिन्न राज्यों में विविध प्रकार की अनाचारपरक परिस्थितियाँ हैं और कई राज्यों में कुछ विद्यालय तो आवश्यक अधिसंरचना से रहित हैं। हम सुझाव देते हैं कि अशासकीय और शासकीय सभी प्रकार के विद्यालय जो निम्नलिखित सुविधाओं से संपन्न हैं, वे अपने विद्यार्थियों के लिए प्राधिकृत

केंद्र हों:

- परिसर की चारदीवारी (दीवार)
- दूरभाष
- विद्युत
- उस क्षेत्र में निकट पुलिस स्टेशन (ग्रामीण विद्यालयों को छूट हो सकती है)
- एक कि.मी. के अंदर फोटोस्टेट सुविधा (ग्रामीण विद्यालयों को छूट हो सकती है)

वे विद्यालय केंद्र बनने का अधिकार खो देंगे जो अनाचार से युक्त हों या उसे रोकने में असमर्थ पाए जाएँ।

2. *परीक्षाएँ कभी स्थगित नहीं होनी चाहिए*–क्योंकि यह काफ़ी दुर्भाग्यपूर्ण है और विद्यार्थियों की अनावश्यक चिंता का कारण बनता है। यह प्रणाली के प्रति निष्ठा को क्षति पहुँचाता है। अध्यापकों की अचानक हड़ताल की स्थिति में पुलिस व जिला परिषद् के सदस्यों को सूचित कर देना चाहिए तथा प्रशिक्षित निरीक्षकों को काम में लगाना चाहिए। सामान्यत: राज्य में एक समुदाय विशेष द्वारा आकस्मिक अवकाश के कारण बोर्ड परीक्षाओं को स्थगित करना पड़ता है। सभी बोर्डों को शैक्षणिक वर्ष के प्रारंभ में शासकीय विज्ञापन द्वारा परीक्षा-कार्यक्रम की घोषणा कर देनी चाहिए तथा सभी समुदायों को कार्यक्रम के बदलाव विषयक अपने विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए अक्तूबर के अंत तक आमंत्रित करना चाहिए, यदि कोई हो तो बाद में तिथियों को अंतिम रूप देना चाहिए। प्रश्नपत्र लीक होने के कारण परीक्षा के भावी स्थगन से बचने के लिए, एक आपातकालीन प्रश्नपत्रों का सेट हाथ में अवश्य होना चाहिए।

3. *परीक्षकों व विद्यार्थियों के परस्पर परिचयों* को गुप्त रखकर परीक्षागत अनाचार को रोका जा सकता है। महाराष्ट्र ने सफलतापूर्वक एनक्रिप्टेड बारकोड की प्रणाली का कार्यान्वयन किया है जो विद्यार्थी के परिचय (और विद्यालय के संकेत) को न केवल परीक्षकों से बल्कि परीक्षा बोर्ड के कर्मचारियों से भी छिपाता है। जब यह राज्यों द्वारा पूर्व प्रयुक्त प्रणाली के साथ सयुंक्त रूप से प्रयुक्त होगा–जैसे उत्तर-पुस्तिकाओं का सांयोगिक चयन कर किसी विशेष परीक्षक को देना तो परीक्षकों के स्तर पर किया जाने वाला अनाचार बहुत मुश्किल हो जाएगा।

4. *प्रश्नपत्र-निर्धारण*–यह एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है जिस पर अधिक ध्यान देने की ज़रूरत है। इस रिपोर्ट के एक पृथक् भाग में इस पर विचार किया गया है। यहाँ केवल इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि प्रश्न-निर्माता या प्रश्नपत्र-निर्माता प्रश्नपत्र के साथ ही उस विषय की प्राथमिक अंक योजना को अवश्य प्रस्तुत करें। यह आश्चर्यजनक है कि यह दो प्रक्रियाएँ कुछ बोर्डों में बिलकुल ही अलग-थलग होती हैं। तदंतर, निश्चित रूप से, अंक योजना का संपादन, परीक्षा के बाद, विशेषज्ञों द्वारा हो जाना चाहिए और तब केवल विद्यार्थी की प्रतिक्रियाओं (उत्तरों) के प्रकाश में इसका पुनर्संपादन हो, जो प्रश्नपत्र में संदिग्धता या त्रुटियों को उद्घाटित कर सकें।

2.6.2 परीक्षाओं का संचालन

1. हालाँकि उड़नदस्तों का विचार अच्छा है और साथ ही जनजागरूकता भी, जो कई राज्यों में धोखाधड़ी व नकल में कमी लाने का काम कर चुका है मुख्यत: प्रत्यक्ष रूप से हरियाणा में पिछले दो सालों में यह काम हुआ है। विद्यार्थियों को परीक्षा देते समय बाधा से बचाना चाहिए और अगर छद्म व्यक्तियों की पहचान के लिए प्रवेश-पत्र की गहन जाँच आवश्यक हो तो विद्यार्थियों को अतिरिक्त समय अवश्य दिया जाना चाहिए।

2. सामान्यत: छुपी हुई इलेक्ट्रॉनिक आँखों द्वारा इलेक्ट्रॉनिक निगरानी और दरवाज़ों पर चुंबकीय पट्टी जैसे प्रौद्योगिकी का प्रयोग कम अनुचित हस्तक्षेप है और अपनी उपस्थिति दर्ज़ कराने के

लिए उत्सुक उड़नदस्तों से श्रेयस्कर है। इन प्रौद्योगिकीय सहायता के सामानों के किराए का मूल्य हाल के वर्षों में तेज़ी से कम हुआ है।

3. बाहर से सहायता, नकल का मुख्य स्रोत है। कभी-कभी उत्तम माध्यमों जैसे शीशा और ड्रम के द्वारा भी नकल हो सकती है। यदि विद्यार्थियों को प्रथम घंटे में परीक्षा-केंद्र से बाहर जाने की आज्ञा न हो और साथ ही इसके बाद अपने साथ प्रश्नपत्रों को बाहर ले जाने की अनुमति न हो तो इनमें से अधिकतर को आरंभ में रोका जा सकता है क्योंकि बाहरी व्यक्ति सामान्यत: नहीं जान पाएगा कि कौन-सा उत्तर प्राप्त कराना है।

4. परीक्षा प्रारंभ होने से ठीक पहले, प्रश्नपत्र पैकेट की सील, तीन विशेष व्यक्तियों द्वारा खोली व हस्ताक्षरित की जानी चाहिए–मुख्य परीक्षक, केंद्र का सुरक्षा प्रमुख/पुलिस, परीक्षार्थी विद्यार्थी। उसी तरह उत्तर पुस्तिका के पैकेट भी परीक्षा-कक्ष से बाहर जाने के पूर्व सील किए जाने चाहिए और समान रूप से प्रति हस्ताक्षरित किए जाने चाहिए।

5. अभ्यर्थियों द्वारा शौचघर प्राय: नकल की सामग्री आदि रखने के लिए प्रयोग में लाए जाते हैं। परीक्षाकालीन अवधि में (शुरू से अंत तक) परीक्षा-कक्ष की भाँति इनकी भी निगरानी नज़दीक से की जानी चाहिए।

6. तुरंत समाप्त प्रश्नपत्रों पर 24 घंटे के अंदर अध्यापकों की प्रतिक्रियाएँ आमंत्रित की जानी चाहिए। पूर्व-निर्धारित प्रपत्र (भौतिक रूप से या ऑन लाइन दोनों) इस उद्देश्य के लिए वितरित किए जाने चाहिए और अध्यापकों को परीक्षा समाप्त होने के 48 घंटे के अंदर वापिस कर देने चाहिए। ये प्रतिक्रियाएँ प्राय: प्रश्नपत्रों की लंबाई, संतुलित विस्तार, उत्तरों में त्रुटियों व संदिग्धताओं की अच्छी निर्णायक होती हैं। अंक की योजना बनाते समय इन दृष्टिकोणों पर ध्यान देना चाहिए।

7. शारीरिक व शैक्षणिक दुर्बलताओं से युक्त विद्यार्थियों को उपलब्ध सुविधाओं व व्यापक रूप से विविध रियायतों की व्यवस्था करना चिंता का एक मुख्य विषय है। कुछ बोर्डों ने इस विषय पर गंभीरता से ध्यान नहीं दिया है। उन्हें अन्य बोर्डों द्वारा कृत प्रगतिशील कार्यवाहियों से परिचित होने की आवश्यकता है। एक अलग फोकस समूह ने अपनी रिपोर्ट में इस पक्ष पर विचार किया है।

2.7 अंक/ग्रेड रिपोर्ट में पारदर्शिता और ईमानदारी

1. चूँकि परीक्षाओं में बहुत कुछ दाँव पर लगा होता है इसलिए यह अत्यंत स्वाभाविक है कि बहुत से परीक्षार्थी दोहरे रूप से आश्वस्त होना चाहेंगे कि वे परीक्षा व्यवस्था की कमियों का शिकार न हों। परीक्षा बोर्डों को केवल पारदर्शी ही नहीं होना चाहिए बल्कि उत्तर पुस्तिका के पुन: ग्रेडिंग और पुन: जाँच के संदर्भ में भी ध्यान देना चाहिए। इस प्रकार के आग्रह व्यवस्था और परीक्षक की गुणवत्ता का आंतरिक लेखा-जोखा रखने का अवसर भी प्रदान करते हैं । यह दु:खद है कि कुछ बोर्ड इस तरह के आग्रहों को अपनी कार्यवाही में बाधा के रूप में देखते हैं। यहाँ तक कि काउंसिल ऑफ़ बोड्र्स ऑफ स्कूल एजुकेशन (कोबसे) सम्मेलन, त्रिवेंद्रम में एक महत्त्वपूर्ण बोर्ड के भूतपूर्व अध्यक्ष ने उच्चतम न्यायालय के उस फैसले का भी विरोध किया, जिसमें परीक्षार्थियों को प्रश्नपत्रों की पुन: जाँच का अधिकार दिया गया था। उन्होंने यह प्रश्न किया कि "हम कैसे जानते हैं कि जो दूसरा परीक्षक है, उसमें भी कमी नहीं है" ऐसी पुन: जाँच के लिए भरोसेमंद वरिष्ठ परीक्षकों को खोज पाने में बोर्ड की अयोग्यता के कारण विद्यार्थियों को पारदर्शिता के अधिकार से वंचित नहीं किया जाना चाहिए।

2. केरल, गुजरात, जम्मू एवं काश्मीर और कर्नाटक जैसे राज्यों ने विद्यार्थियों को उनकी उत्तर पुस्तिकाएँ (स्कैन की हुई या छायाप्रति/फोटोस्टेट) एक निश्चित शुल्क पर उपलब्ध कराने का काम शुरू किया है। इससे इन राज्यों में पुन: जाँच के आवेदनों में आश्चर्यजनक कमी आई है। हम इन राज्यों और

दूसरे अन्य राज्यों में अपनी प्रणाली को ज़्यादा पारदर्शी बनाने की कोशिशों की सराहना करते हैं। कोई आश्वस्त हो सकता है कि इन राज्यों में अब लापरवाह परीक्षक अपना काम ज़्यादा बेहतर ढंग से करेंगे। व्यवस्था में ज़्यादा पारदर्शिता ज़्यादा विश्वसनीयता और योग्यता को उत्पन्न करती है। हम इस बात की ज़ोरदार अनुशंसा करते हैं कि सभी दूसरे राज्य भी विद्यार्थियों को उनकी माँग पर उचित खर्च लेकर (लेकिन रियायती दर पर नहीं) ऐसे अवसर प्रदान करने की एक व्यवस्था सुनिश्चित करें।

3. विस्तृत अंक योजना को भी सार्वजनिक किया जाना चाहिए और पारदर्शिता हेतु जितनी जल्दी संभव हो, इस योजना को परीक्षण के लिए आधिकारिक वेबसाइट पर दिया जाना चाहिए। जहाँ कई प्रश्नपत्रों (नकल को रोकने के लिए) का एक साथ प्रयोग किया गया है कठिनाई के स्तर के लिए उनका मानकीकरण किए जाने की ज़रूरत है और यदि एक प्रश्नपत्र दूसरे से ज़्यादा कठिन हो तो उसके अनुकूल मूल्यांकन किया जाए। कई बोर्डों में ऐसा नहीं होता। एक उत्तरी राज्य के बोर्ड अध्यक्ष के उत्तर को यहाँ उद्धृत करना उचित होगा कि "एक ही प्रश्नपत्र बनाने वाले ने सभी पाँच प्रश्नपत्रों का सेट एक ही दिन बनाया था, इसलिए हमने मान लिया कि उनकी कठिनाई का स्तर तुलनीय होगा।"

4. उत्तर पुस्तिकाओं की स्कैन/फोटोस्टेट की गई प्रतियों की आपूर्ति और ग्रेड हेतु आग्रह करने की अंतिम अवधि के बीच पर्याप्त समय (कम से कम दो सप्ताह) दिया जाना चाहिए। पुन: जाँच के कार्य वरिष्ठ एवं अनुभवी परीक्षकों द्वारा किए जाने चाहिए। इस संदर्भ में हमारे निम्नलिखित सुझाव हैं–यदि पहले पुन:अंकन के परिणाम में कुल अंकों में 5 प्रतिशत से कम का अंतर आता है, तो पहले प्राप्त किए गए अंक मान्य हों। अगर अंतर 5 से 10 प्रतिशत हों तो नए प्राप्तांक मान्य हों। अगर भिन्नता 10 प्रतिशत से ज़्यादा है तो इसे अंतिम निर्णय के लिए उच्च स्तरीय परीक्षक (बेहतर होगा, कि जो अंक योजना तैयार करने की प्रक्रिया में शामिल हो) के पास भेजा जाए।

   अगर अंतिम अंक में 5 प्रतिशत से ज़्यादा परिवर्तन होता है, तो स्पष्ट रूप से बोर्ड की तरफ़ से चूक है और सदाशयतापूर्वक व्यवहार के रूप में पुन: जाँच हेतु लिए गए शुल्क को विद्यार्थी को वापस कर देना चाहिए। (यह तर्क, कि वे अपने अंकों में वृद्धि के कारण खुश होंगे और उन्हें इस छोटी सी राशि की परवाह नहीं करनी चाहिए, यह रवैया उचित नहीं है)।

5. ग्रेड हेतु अनावश्यक आग्रहों को रोकने के लिए बोर्ड को अंक/ग्रेड बढ़ाने के *साथ ही कम करने* का अधिकार भी सुरक्षित रखना चाहिए अगर पुन:अंकन के बाद विचलन 5 प्रतिशत से ज़्यादा पाया जाता है।

6. उपर्युक्त सभी उपाय परीक्षक नियंत्रण की अच्छी व्यवस्था के निर्माण एवं अनुरक्षण के विकल्प नहीं हैं, बल्कि केवल अतिरिक्त बचाव के उपाय हैं। प्रत्येक परीक्षक के कम से कम 10 प्रतिशत और बेहतर हो कि 20 प्रतिशत कार्य को नियमन के लिए भेजा जाना चाहिए और उसी तरह प्रत्येक नियमन के 10 से 20 प्रतिशत कार्य को एक वरिष्ठ नियमन के पास भेजा जाना चाहिए। जिन परीक्षकों द्वारा दिए गए अंकों और नियमकों द्वारा दिए गए अंकों में परस्पर संबद्धता बहुत बुरी हो, ($r<0.8$) या जहाँ विचलन 10 प्रतिशत से ज़्यादा हो, वैसे शिक्षकों पर जुर्माना किया जाना चाहिए और भविष्य में उन्हें परीक्षण कार्य से वंचित कर दिया जाना चाहिए, जैसा कि कर्नाटक में किया जाता है। ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है कि 'अक्षम' परीक्षकों द्वारा किए गए तमाम मूल्यांकनों का पुन:अंकन किया जाना चाहिए। परीक्षक विविधता को जाँचने एवं समायोजित करने के लिए जो सांख्यिकीय पद्धतियाँ मौजूद हैं इन्हें लागू किया जाना चाहिए।

7. उपर्युक्त बिंदु (6) में यह पहले से ही माना गया है कि परीक्षक ऐसे कार्यकर्ता होते हैं, जो अच्छा कार्य करने को उत्सुक रहते हैं। यह तभी हो सकता है, अगर उन्हें उनके महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए उचित पारिश्रमिक दिया जाए। परीक्षकों को बलपूर्वक परीक्षण कार्य में लगाने से अच्छे परीक्षण कार्य की संभावना को धक्का पहुँचता है और भविष्य में इसे बंद किया जाना चाहिए। इससे भी बढ़कर यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि सभी अच्छे शिक्षक योग्य परीक्षक नहीं होते और यही बात इसके विपरीत भी लागू होती है। हम अनुशंसा करते हैं कि 100 या 125 रुपये के कम भत्ते को बढ़ाकर मात्र 10 या 20 प्रतिशत की वृद्धि नहीं, बल्कि दोगुना या तीन गुना कर दिया जाए–और अनमने ढंग से काम करने वाले परीक्षकों को इस काम से अलग कर दिया जाए, अगर बोर्ड परीक्षकों को बेहतर भुगतान करे तो बहुत सारी समस्याएँ हल हो जाएँगी। यह विदित है कि भारत में अधिकांश राज्यों के बोर्डों की आर्थिक हालत काफ़ी अच्छी है–यहाँ तक एक छोटा राज्य बोर्ड भी 84 करोड़ रुपये की आमदनी करता है–तो पैसे की समस्या आड़े नहीं आनी चाहिए। इस उच्च भुगतान का सहसंबंध परीक्षक द्वारा दिए गए अंक और वरिष्ठ नियमक द्वारा दिए गए अंकों के साथ देखा जाना चाहिए। नियमक या वरिष्ठ नियमक के पद पर प्रोन्नति केवल वरिष्ठता के आधार पर नहीं बल्कि योग्यता पर होनी चाहिए–जो उसके द्वारा दिए गए अंकों के परस्पर संबंध से मापा जाए। खासकर कर्तव्यनिष्ठ परीक्षकों को विशेष पुरस्कार दिए जाने चाहिए, जैसा कि श्रेष्ठ शिक्षकों के लिए होता है।

8. अगर, हमारी अनुशंसा के अनुसार राज्य बोर्ड खुले अंत वाले तथा मुक्त-उत्तर वाले प्रश्नों को ज़्यादा शामिल करें और गलत विषयीकरण से परहेज़ करें तो ऐसे प्रश्नों को जाँचने के लिए विशेषज्ञ परीक्षकों को प्रशिक्षित करना होगा। ऐसी स्थिति में कि एक परीक्षक पूरी उत्तर पुस्तिका की जाँच करे, बजाए इसके प्रत्येक प्रश्न की अलग परीक्षक द्वारा जाँच को तरजीह दी जाए। कुछ राज्य पहले से ऐसा कर रहे हैं।

9. इसकी अनुशंसा की जाती है कि परीक्षक सामान्यत: परीक्षण कार्य के लिए निर्धारित क्षेत्रीय केंद्रों पर ही उत्तर पुस्तिकाओं को जाँचे, घर पर नहीं। थकान के कारण होने वाली त्रुटि को रोकने के लिए प्रत्येक परीक्षक को एक दिन में अधिकतम 25 उत्तर पुस्तिकाएँ दी जानी चाहिए।

10. *अंक पत्रों में ईमानदारी:* जबकि 'अंक अथवा ग्रेड' के बारे में ताज़ा बहस खेदजनक हो गई है। क्योंकि इसने सबका ध्यान (प्रसार माध्यमों का) परीक्षा सुधारों के सिर्फ एक पहलू पर केंद्रित किया है, 'ग्रेड' को 'अंक' के ऊपर एक स्पष्टत: श्रेष्ठता हासिल है। ग्रेड में अधिक ईमानदारी होती है। औसत परीक्षक की योग्यता विदित है–वे प्राय: बलपूर्वक परीक्षण कार्य में लगाए जाते हैं और हमेशा अल्प भत्ता पाते हैं इसलिए प्रश्नों की अस्पष्टता और अधिकांश बोर्डों में नियंत्रण व्यवस्था के अभाव के कारण विद्यार्थी को दिए गए अंकों में प्राय: उच्च मानक त्रुटि पाई जाती है। अंक देने से अधिक ईमानदारी ग्रेड देने में होती है, उदाहरण के लिए, किसी को 74 अंक देने के बदले बी ग्रेड दे देना ज़्यादा बेहतर है। बी ग्रेड का दायरा 70 से 80 प्रतिशत तक होता है। ग्रेड को अंक के ऊपर कुछ दूसरी श्रेष्ठताएँ भी हासिल हैं। उदाहरण के लिए, परीक्षा उत्तर पुस्तिकाओं में स्वत: पुन:ग्रेडिंग को उन विद्यार्थियों तक सीमित किया जा सकता है, जो वर्तमान में निचले ग्रेड के उपरी सिरे पर होते हैं। उन्हीं विद्यार्थियों पर त्रुटि का नकारात्मक प्रभाव पड़ने की प्रबल संभावना होती है। ग्रेड्स तनाव को कम करने में भी कुछ भूमिका अदा कर सकते हैं और मीडिया तथा कोचिंग संस्थानों को अति प्रिय 'उच्च स्थान प्राप्त करने वाले विद्यार्थी' संबंधी खेल को समाप्त करने में भी।

इसी के साथ हमें यह भी मानना चाहिए कि ग्रेड रामबाण नहीं है, जैसा कि इसके कुछ हिमायतियों ने इसे ऐसा सिद्ध कर दिया है, और अंक से ग्रेड की तरफ़ परिवर्तन ज़्यादा-से-ज़्यादा एक सामान्य परीक्षा-सुधार है।

हम एन.सी.ई.आर.टी., सी.बी.एस.ई. तथा केरल और कर्नाटक बोर्डों द्वारा ग्रेड के गुण और विश्वसनीयता को लोगों के बीच लोकप्रिय बनाने (मीडिया द्वारा नकारात्मक प्रचार के खतरे के बावजूद) के प्रयासों की सराहना करते हैं। ग्रेड के मूल्य और आवश्यकता के बारे में विश्वविद्यालयों को विश्वास दिलाने के लिए अधिक प्रयत्न करना होगा। यह बहस का विषय है कि ग्रेड का निर्धारण निरपेक्ष या सापेक्ष आधार पर होना चाहिए और अगर वह सापेक्ष आधार पर होता है तो यह भी विवादास्पद है कि उसे प्रतिशत के आधार पर जोड़ जाए, स्टेनाइन स्कोर के आधार पर या और किसी आधार से। इन प्रश्नों पर बोर्ड के बीच सहमति बनाना जरूरी है। 10वीं और 12वीं की कक्षाओं के लिए नौ प्वाइंट स्केल के अनुसार ग्रेडिंग करना आवश्यक है ताकि विभिन्न बोर्डों के बीच परीक्षाफलों में तुलनात्मकता बनी रहे। जब तक इस पर सहमति नहीं बनती तब तक के लिए हमारा परामर्श है कि अंक के साथ-साथ ग्रेड भी, अंकतालिका में दर्शाए जाने चाहिए ताकि किसी प्रकार के भ्रम से बचा जा सके।

11. *अंकतालिका में पारदर्शिता और निष्पक्षता–* किस तरह एक विद्यार्थी अपने समकक्ष विद्यार्थियों की तुलना में सफल होता है, इसके पूर्ण प्रकटीकरण को हम बहरहाल बराबर महत्त्व (जैसाकि अंक के बदले ग्रेड का विषय है) का सुधार मानते हैं। संप्रति, पंजीकरण और ग्रेड प्रतिवेदन के कंप्यूटरीकरण के साथ ही अंकतालिका में प्रदर्शन प्रतिमानों का विस्तृत निरूपण-पूर्ण अंक/ग्रेड, किसी एक विषय में विद्यार्थियों के मध्य शतमक श्रेणी, समकक्ष विद्यार्थियों के मध्य शतमक श्रेणी (उदाहरणस्वरूप एक ग्रामीण या शहरी खंड के स्कूल) देना संभव है। विशेषकर अंतिम मानक के बारे में हमारी मान्यता है कि यह योग्यता की निर्णायक जाँच है। भारत में हमने दीर्घकाल से प्रत्येक विषय में एकमात्र अंक और कुल मिलाकर एक मात्र शतमक तक योग्यता को सीमित कर दिया है। योग्यता अपेक्षाकृत अधिक जटिल अवधारणा है। क्या हम ईमानदारीपूर्वक कह सकते हैं कि दो विद्यार्थी, जिन्होंने 75 प्रतिशत अंक प्राप्त किये हैं, लेकिन एक विद्यार्थी दक्षिण मुंबई के एक स्कूल में पढ़ा है और दूसरा ग्रामीण क्षेत्र के एक स्कूल में, समान योग्यता वाले हैं? क्या ग्रामीण विद्यार्थी को व्यवस्थागत बड़ी विषमताओं को नहीं पार करना पड़ा होगा? स्कूल बोर्ड इन कारणों पर विचार करने के लिए विश्वविद्यालय प्रवेश समितियों या नौकरी मंडी पर दबाव नहीं डाल सकते। लेकिन इस आँकड़े का अंक तालिका पर मुद्रण योग्यता की ज़्यादा सही परिभाषा की ओर एक शुरुआत है।

2.8 विद्यालय-आधारित आकलन

हालाँकि इस समूह का प्राथमिक कार्य परीक्षा-प्रणाली में सुधार के लिए सुझाव देना था, हम स्कूल-आधारित आकलन के महत्त्व पर एक संक्षिप्त निवेदन करना चाहेंगे।

1. *सतत एवं व्यापक मूल्याकंन (सी.सी.ई.):* समूह ने दृढ़तापूर्वक महसूस किया कि (क) बच्चों पर से दबाव कम करने (ख) मूल्यांकन को व्यापक और नियमित बनाने (ग) शिक्षकों को रचनात्मक शिक्षण का अवसर देने (घ) निदान के लिए साधन उपलब्ध कराने और श्रेष्ठतर योग्यता वाले विद्यार्थियों को तैयार करने के लिए स्कूल-आधारित मूल्यांकन व्यवस्था स्थापित हो। यह योजना सरल, लचीली और एक संभ्रांत स्कूल से लेकर ग्रामीण या आदिवासी क्षेत्र में स्थित किसी भी प्रकार के स्कूल में लागू करने योग्य हो। योजना के मुख्य सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक स्कूल को अपने शिक्षकों को शामिल करते हुए, उन शिक्षकों द्वारा स्वीकार्य एक उपयुक्त सरल योजना का विकास करना चाहिए।

2. *सी.सी.ई. प्रमाणपत्र को जारी करना*–सी.सी.ई. को प्रभावी बनाने के लिए राज्य शिक्षा बोर्ड द्वारा जारी स्कूल-परित्याग प्रमाण-पत्र में स्कूल-आधारित आकलन को भी कुछ महत्त्व दिया जाना चाहिए। स्कूल में सभी क्षेत्रों में विद्यार्थी के प्रदर्शन का प्रमाण-पत्र बोर्ड के प्रमाण-पत्र के साथ दिया जाना चाहिए। विद्यार्थी की निष्पत्ति स्कूली शिक्षा के चरण के उपयुक्त प्रत्येक क्षेत्र में ग्रेड के रूप में दिखाई जानी चाहिए। मूल्यांकन के दोनों तरीके अर्थात् आंतरिक और बाह्य, बोर्ड द्वारा जारी प्रमाण पत्र में, आदर्शत: अलग तरीके से दिखाए जाने चाहिए। प्रारंभ में सी.सी.ई. को दसवीं कक्षा में 20% भार दिया जा सकता है।

3. *आंतरिक आकलन में ईमानदारी बरतना*–यह ज्वलंत प्रश्न है कि स्कूलों की आंतरिक ग्रेडिंग में ईमानदारी कैसे बरती जाए और इसको सुनिश्चित किए बिना बोर्ड के अंकपत्रों के अंतिम उपयोगकर्ताओं में इसके प्रति रुचि उत्पन्न नहीं होगी। सामान्यत: हम आंतरिक ग्रेडिंग के साथ बोर्ड द्वारा बाह्य-नियमन (बेतरतीब लेकिन आवश्यक नमूने के चयन द्वारा) की एक पद्धति की अनुशंसा करते हैं। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक विषय में आंतरिक रूप से आकलित कार्य के अभिकल्पित नमूने को बोर्ड के पास अवश्य भेजा जाना चाहिए। ऐसे मामलों में जब बोर्ड गुणवत्ता से संतुष्ट हो, उन्हें इसके अनुमोदन का अंक मिलना चाहिए। अन्यथा अंकतालिका में सी.सी.ई. द्वारा दिए गए अंक को इस टिप्पणी के साथ पढ़ना चाहिए–"बिना बोर्ड प्रमाणीकरण के स्कूल द्वारा घोषित।" ऐसे मामलों में जहाँ गुणवत्ता का पूरा ध्यान रखा गया है, लेकिन दिए गए अंक अत्यधिक हैं तो सी.सी.ई. के लिए स्कूल औसत का उल्लेख किया जाना चाहिए–जो ज़रूरत से ज़्यादा अंक दिए जाने के मामलों में इस उपलब्धि का महत्त्व अंतिम उपयोगकर्ता की नज़र में स्वत: ही घटा देगा।

4. *प्रायोगिक परीक्षाएँ*–अधिकांश बोर्डों में, स्कूलों द्वारा विज्ञान विषयों की प्रायोगिक परीक्षाओं में छिछला मूल्यांकन किया जाता है जहाँ अधिकांश विद्यार्थियों को (यहाँ तक कि प्रायोगिक परीक्षा लिए बिना ही), पूर्णांक के बराबर या उससे थोड़ा ही कम अंक मिलता है। ये घटनाएँ इस स्थिति का अच्छा उदाहरण हैं, जब बोर्ड स्कूल-आधारित मूल्यांकन के नमूनों की जाँच और नियंत्रण की अपनी ज़िम्मेवारी का परित्याग कर देता है। यहाँ सुझाए गए जाँच के तरीकों को बिना विलंब के लागू किए जाने की ज़रूरत है। अगर वे ऐसा नहीं कर सकते, तो स्कूल-आधारित प्रायोगिक परीक्षाओं का स्वाँग अवश्य समाप्त होना चाहिए और विज्ञान विषयों में अंक पूरी तरह सैद्धांतिक परीक्षाओं के आधार पर दिए जाएँ (तब उसमें प्रयोगों की योजना बनाने पर एक खंड रखना होगा)। उसके बाद यह निष्कर्ष निकालना दुर्भाग्यपूर्ण होगा कि अच्छे प्रयोग और प्रायोगिक योग्यताएँ वैज्ञानिक उपक्रम का केंद्रबिंदु हैं। जब तक प्रयोगशाला मूल्यांकन को कम ढोंगपूर्ण नहीं बनाया जाएगा देश की वैज्ञानिक जनशक्ति की गुणवत्ता को गंभीर खतरा है। वैज्ञानिक क्षेत्रों में रुचि रखने वाले विद्यार्थियों की संख्या कई राज्यों में पहले ही से कम हो रही है।

3. निष्कर्ष

उपर्युक्त बातों से यह स्पष्ट होना चाहिए कि भारत में बोर्ड परीक्षाओं के पुनर्परीक्षण की गंभीर ज़रूरत है। इस वास्तविकता का आभास कई बोर्डों के अध्यक्षों और शिक्षा विभाग के सचिवों के स्तर पर, 'सब कुछ ठीक है' और स्वयं को बधाई देने के विचार के कारण सिरे से नदारद है। अगर हम स्वयं को 'संतुष्ट भाव से आत्मसम्मान के घातक आवरण' में लपेटे रखना जारी रखेंगे तो स्थितियों में कोई सुधार नहीं होगा। इसी समय देश भर के स्कूली शिक्षकों से अपनी कई मुलाकातों में, सुधारों के प्रति शिक्षकों का उत्साह देखकर समूह को बहुत ऊर्जा मिली है। शिक्षकों का ऐसा समर्थन बहुत निर्णायक है। इन सुधारों की सफलता या असफलता

शिक्षकों और परीक्षकों के प्रशिक्षण को महत्त्व देने पर निर्भर करती है। इस प्रकार के प्रशिक्षण में पर्याप्त समय, प्रयास और पैसे के निवेश की आवश्यकता होगी। इनमें से ज़्यादातर को 'एडुसेट' (EDUSAT) और शिक्षक प्रशिक्षण के दूरस्थ शिक्षा वाले तरीके से पूरा किया जा सकता है। सेवा-पूर्व शिक्षक-प्रशिक्षण पाठ्यक्रम की भी समीक्षा की आवश्यकता होगी। सेवारत शिक्षकों के लिए शैक्षिक मापन और मूल्यांकन के लिए एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा एक प्रमाण-पत्र/उपाधि पाठ्यक्रम शुरू किया जाना चाहिए। *एकमात्र परीक्षा प्रणाली में सुधारों से बहुत कुछ हासिल नहीं होगा, जब तक कि इसे दूसरे आधारभूत सुधारों के साथ संलग्न नहीं किया जाता जैसे शिक्षक-प्रशिक्षण, शिक्षक गुणवत्ता और शिक्षक-विद्यार्थी अनुपात में सुधार। इसके अलावा पाठ्यपुस्तकों और पाठ्यचर्या को ज़्यादा प्रासंगिक, रुचिपूर्ण और चुनौती भरा बनाना और शिक्षा पर ज़्यादा व्यय करना (सभी स्तरों पर, लेकिन फिलहाल विशेष रूप से माध्यमिक शिक्षा के लिए) अत्यावश्यक होगा।*

इसी के साथ यह भी माना जाना चाहिए कि परीक्षा सुधारों में शिक्षा सुधार की तरफ़ ले जाने की क्षमता है। प्रायः इसका खेद प्रकट किया जाता है कि भारतीय शिक्षा में पूँछ (मूल्यांकन) ने कुत्ते (अधिगम और अध्यापन) को हिलाया है न कि कुत्ते ने पूँछ को। यह आरोप उचित है और परीक्षाओं का महत्त्व घटाना निश्चित रूप से सीखने और अध्यापन प्रक्रिया को इसके तंग दायरे से मुक्त करेगा। लेकिन शिक्षा व्यवस्था में परीक्षाओं की इस केंद्रीय स्थिति का उपयोग लाभ को बढ़ाने में किया जा सकता है—समग्र रूप से भारतीय शिक्षा में सुधार। जैसाकि हम पिछले दशक में सरकार को कई दूसरे क्षेत्रों में देख चुके हैं। शासन में जब परिवर्तन की हवा बहनी शुरू होती है, यह तमाम मकड़ जालों को साफ़ कर देती है। महत्त्वपूर्ण है कि बदलाव की शुरुआत की जाए।

परिशिष्ट 1

कुछ आधारभूत दीर्घकालिक सुधारों के परीक्षण हेतु अनुशंसित प्रायोगिक कार्यक्रम

- **प्रायोगिक कार्यक्रम 1**–सभी परीक्षाओं में 60 प्रतिशत या इससे ज़्यादा बहुविकल्पीय प्रश्नों का समावेश करने की ओर कदम। (कर्नाटक में पहले से प्रारंभ)
- **प्रायोगिक कार्यक्रम 2**–स्कूल समाप्ति पर एक हलकी सी परीक्षा। पढ़े गए सभी विषयों से शामिल किए गए 150 बहुविकल्पीय प्रश्नों की तीन घंटे की परीक्षा। इसका एकमात्र उद्देश्य स्कूल द्वारा दिए गए परीक्षा ग्रेड को मान्यता देना है और उनको नियंत्रण कारक द्वारा बढ़ाना/घटाना है। (तुर्की में पहले से ही विद्यमान)
- **प्रायोगिक कार्यक्रम 3**–किताब खोलकर परीक्षाएँ और स्रोत विश्लेषण पर आधारित मूल्यांकन और बिना समय सीमा की परीक्षाएँ भी।
- **प्रायोगिक कार्यक्रम 4**–परीक्षा व्यवस्था अनिवार्य रूप से धीरे-धीरे उस तरफ़ बढ़नी चाहिए जिसमें विद्यार्थियों की माँग पर परीक्षाएँ (ऐसी परीक्षाएँ सामान्यत: अंतरराष्ट्रीय स्तर पर 'ऑन लाइन' ली जाती हैं) जब वे तैयार हों, तभी ली जाएँ न कि व्यवस्था की सुविधा के अनुसार। हमारा सुझाव है कि एक छोटी-सी शुरुआत प्रायोगिक परियोजना के रूप में कंप्यूटर विज्ञान की परीक्षाओं में की जाए और भविष्य में इसका विस्तार गणित और भौतिक शास्त्र की परीक्षा में भी किया जाए।

परिशिष्ट 2

सतत एवं व्यापक मूल्यांकन (सी.सी.ई.)

स्कूलों में सी.सी.ई. को एक प्रभावी और व्यवस्थित रीति से शामिल किए जाने की ज़रूरत लंबे समय से महसूस की जा रही है। चूँकि स्कूल शिक्षा बोर्डों द्वारा संचालित परीक्षाओं में कुछ कमियाँ हैं, इसलिए अब स्कूल स्तर पर सी.सी.ई. को ज़्यादा महत्त्व दिया जाता है। कुछ एक बोर्डों ने स्कूलों में लागू करने के लिए सी.सी.ई. की योजना का विकास किया है। कुछ मामलों में पब्लिक स्कूलों के प्राचार्यों ने अपने स्तर पर परीक्षण की आवधिक व्यवस्था को प्रारंभ करने के लिए कदम उठाए हैं। कुछ राज्यों में सरकार ने शैक्षिक क्षेत्र में आवधिक परीक्षण के लिए प्रयास शुरू किए हैं, लेकिन सह-शैक्षिक क्षेत्र को ऐसे ही छोड़ दिया गया है। सी.सी.ई. को स्कूली शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर संस्थागत रूप दिए जाने की आवश्यकता है। वर्तमान स्वरूप में, बोर्ड द्वारा किए गए मूल्यांकन को ज़्यादा महत्त्व दिया जाता है और स्कूल-आधारित मूल्यांकन को पीछे धकेल दिया गया है। यह परिदृश्य अब बदल रहा है। कई स्कूल-बोर्ड सी.सी.ई. के महत्त्व पर बल दे रहे हैं और राज्य शिक्षा विभाग के सहयोग से इसे स्कूलों में लागू करने हेतु उपाय कर रहे हैं। सी.सी.ई. को बोर्ड मूल्यांकन के विकल्प के रूप में नहीं बल्कि पूरक के रूप में देखा जाना चाहिए।

सतत एवं व्यापक मूल्यांकन (सी.सी.ई.) की विशेषताएँ

1. सतत एवं व्यापक मूल्यांकन (सी.सी.ई.) का अर्थ विद्यार्थी के स्कूल-आधारित मूल्यांकन व्यवस्था से है, जो विद्यार्थी के विकास के सभी पक्षों पर ध्यान देता है।
2. सी.सी.ई. का 'सतत' पक्ष मूल्यांकन की 'निरंतरता' और आवर्तन पर ध्यान देता है।
3. सतत का अर्थ है–अनुदेशन के प्रारंभ में विद्यार्थी का आकलन (स्थापन मूल्यांकन) और अनुदेशन प्रक्रियाओं के दौरान अनौपचारिक रूप से मूल्यांकन की विविध तकनीकों का उपयोग करते हुए आकलन (निर्माणात्मक मूल्यांकन)।
4. आवर्तन का अर्थ है–कसौटी संदर्भित परीक्षणों का तथा मूल्यांकन की विविध तकनीकों का उपयोग करते हुए बहुधा इकाई/अवधि के अंत में निष्पत्ति का आकलन (योगात्मक)।
5. सी.सी.ई. का 'व्यापक' अवयव बच्चे के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के मूल्यांकन पर ध्यान देता है।
6. शैक्षिक क्षेत्र के अंतर्गत पाठ्यचर्या क्षेत्र या विषय-विशेष क्षेत्र आते हैं, जबकि सह-शैक्षिक पक्ष में पाठ्य सहगामी और व्यक्तिगत सामाजिक गुण, रुचियाँ, अभिवृत्तियाँ तथा मूल्य समाहित हैं।
7. शैक्षिक क्षेत्रों में जाँच की विविध तकनीकों का औपचारिक और अनौपचारिक उपयोग करते हुए नियत कालिक और निरंतर मूल्यांकन किया जाता है। निदानात्मक मूल्यांकन इकाई/अवधि परीक्षण के अंत में होता है। कुछ इकाइयों में खराब प्रदर्शन के कारणों की जाँच निदानात्मक परीक्षण के द्वारा की जाती है। इन सबका सोद्देश्य समाधान मध्यस्थता के पश्चात् पुनः परीक्षण द्वारा किया जाता है।
8. सह-शैक्षिक क्षेत्रों में मूल्यांकन पहचानी गई कसौटियों के आधार पर विविध तकनीकों का उपयोग करते हुए किया जाता है, जबकि व्यक्तिगत सामाजिक गुणों में मूल्यांकन विभिन्न अभिरुचियों, नैतिक मूल्यों, प्रवृत्तियों इत्यादि के व्यवहार सूचकों का उपयोग करते हुए किया जाता है।

(अ) शैक्षिक क्षेत्र

स्तर	कक्षाएँ	प्रक्रियाएँ/तकनीक	उपकरण	आवर्तन एव अभिलेखन	प्रतिवेदन
प्राथमिक	पहली एवं दूसरी	• अवलोकन • मौखिक • लिखित	• अवलोकन सारणी • मौखिक प्रश्न • प्रश्नपत्र • निदानात्मक परीक्षण	• दिन प्रतिदिन अवलोकन एवं शिक्षक द्वारा अभिलेखन • इकाई/योग्यता के अंत में • परीक्षण के बाद अभिलेखन	• प्रत्यक्ष/निरपेक्ष श्रेणीकरण (तीन बिंदु)
	तीसरी, चौथी एवं पाँचवीं	• मौखिक • लिखित	• मौखिक प्रश्न • प्रश्नपत्र • प्रदत्त कार्य • गतिविधि • निदानात्मक परीक्षण	• इकाई के अनुसार • मासिक • आवधिक • परीक्षण के बाद अभिलेखन	• निरपेक्ष श्रेणीकरण (तीन बिंदु)
उच्च प्राथमिक	छठी से आठवीं तक	• मौखिक • लिखित • प्रायोगिक	• मौखिक प्रश्न • प्रश्नपत्र • प्रदत्त कार्य • परियोजना • निदानात्मक परीक्षण • गतिविधि/प्रयोग	• इकाई के अनुसार • मासिक • आवधिक • परीक्षण के बाद अभिलेखन	• निरपेक्ष श्रेणीकरण (पाँच बिंदु)
माध्यमिक	नवीं एवं दसवीं	• लिखित • प्रायोगिक • मौखिक परीक्षा	• प्रश्नपत्र • प्रदत्त कार्य • परियोजना • प्रायोगिक (गतिविधि/प्रयोग) • मौखिक प्रश्न	• इकाई के अनुसार • मासिक • आवधिक • परीक्षण के बाद अभिलेखन	• निरपेक्ष श्रेणीकरण (नौ बिंदु)
उच्च माध्यमिक	ग्यारहवीं एवं बारहवीं	• लिखित • प्रायोगिक • मौखिक परीक्षा	• प्रश्नपत्र • प्रदत्त कार्य • परियोजना • प्रायोगिक (गतिविधि/प्रयोग) • मौखिक प्रश्न	• इकाई के अनुसार • मासिक • आवधिक • परिक्षण के बाद अभिलेखन	• निरपेक्ष श्रेणीकरण (नौ बिंदु)

(ब) सह-शैक्षिक क्षेत्र

क्रम संख्या	**सह पाठ्यचर्या क्रियाकलाप**	**व्यक्तिगत सामाजिक गुण जिसमें अभिवृत्तियाँ तथा मूल्य शामिल हैं**
I	**सहित्यिक**	स्वच्छता
	1. पाठन/वाचन	सहयोग
	2. वाद-विवाद/भाषण देना	समयनिष्ठता/नियमितता
	3. रचनात्मक लेखन	अनुशासन/आज्ञाकारिता
II	**वैज्ञानिक**	भावनात्मक स्थायित्व
	1. सभा की गतिविधियाँ	पहल
	2. प्रकृति अध्ययन	जिम्मेवारी
	3. कंप्यूटर साक्षरता	कर्मठता
III	**कलात्मक**	पर्यावरण जागरूकता
	1. रेखांकन	सहिष्णुता
	2. चित्रकारी	अच्छे गुणों की सराहना
	3. कढ़ाई	नेतृत्व
	4. शिल्प	सच्चाई
	5. मूर्तिकला	देशभक्ति
IV	**सांस्कृतिक**	समाज सेवा
	1. संगीत (वाद्ययंत्र/गायन)	नागरिक चेतना
	2. प्रदर्शन कलाएँ (नाट्य/नृत्य)	शारीरिक श्रम का सम्मान
V	**शारीरिक (खेल/मनोरंजन एवं योग)**	बड़ों/गुरुजनों के प्रति आदर भाव
	1. भीतरी	पर्यावरण संरक्षण
	2. बाहरी	सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण
	3. योगाभ्यास	
VI	**विविध**	
	1. प्राथमिक चिकित्सा	
	2. रेड क्रॉस	
	3. बालचर क्रम (स्काउटिंग)	
	4. राष्ट्रीय कैडेट कोर (एनसीसी)	
	5. राष्ट्रीय सेवा योजना (एनएसएस)	
	6. साहसिक गतिविधियाँ	
	7. अन्य शौक	

संदर्भ सूची

- बैरो कमिटी रिपोर्ट ऑफ़ स्केलिंग एंड ग्रेडिंग 1981, सी.ओ.बी.एस.ई., नयी दिल्ली: ए.आई.यू.
- चेज, एफ. (1979)–स्टूडेंट्स एंड फैकल्टी व्यू ऑन द ग्रेडिंग सिस्टम–नेशनल काउंसिल ऑन मेजरमेंट इन एजुकेशन, सैन फ्रांसिस्को की वार्षिक सभा में प्रस्तुत शोध पत्र
- भारत सरकार (1966)–शिक्षा आयोग की रिपोर्ट (1964-66): शिक्षा और राष्ट्रीय विकास, शिक्षा मंत्रालय, नयी दिल्ली
- भारत सरकार (1986)–राष्ट्रीय शिक्षा नीति, शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नयी दिल्ली
- भारत सरकार (1991)–'प्रबुद्ध एवं मानवोचित समाज की ओर' राष्ट्रीय शिक्षा नीति की समीक्षा हेतु गठित समिति की रिपोर्ट, शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नयी दिल्ली
- भारत सरकार (1992)–कार्य योजना, शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नयी दिल्ली
- भारत सरकार (1993)–'शिक्षा बिना बोझ के'–शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नयी दिल्ली द्वारा गठित राष्ट्रीय सलाहकार समिति की रिपोर्ट
- अन्तर्राष्ट्रीय स्नातक परीक्षा संगठन (2004)–डिप्लोमा प्रोग्राम एसेसमेंट प्रिंसिपल्स एंड प्रैक्टिस, जेनेवा
- कुमार, कृष्ण (2005)–शिक्षा की राजनीतिक कार्यावली–औपनिवेशिक एवं राष्ट्रीय विचारों का एक अध्ययन, द्वितीय संस्करण, सेज (sage), नयी दिल्ली
- नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ़ एडवांस्ड स्टडीज़ (2003)–प्रारंभिक शिक्षा का बेसलाइन अध्ययन: ज़िला चामराज नगर: संक्षिप्त रिपोर्ट
- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (1971)–परीक्षाओं पर गठित समिति की रिपोर्ट, सी.ए.बी.ई. (केब), सामाजिक कल्याण शिक्षा मंत्रालय, भारत, नयी दिल्ली
- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (1975)–दस वर्षीय स्कूली शिक्षा के लिए पाठ्यचर्या–एक रूपरेखा, नयी दिल्ली
- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (1988)–प्रारंभिक एवं माध्यमिक शिक्षा हेतु राष्ट्रीय पाठ्यचर्या–एक रूपरेखा, नयी दिल्ली
- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (2000)–विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, नयी दिल्ली
- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (2001)–विद्यालयों में ग्रेड प्रणाली, नयी दिल्ली
- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (2003)–सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन, प्राथमिक कक्षाओं के शिक्षकों के लिए पुस्तिका, नयी दिल्ली